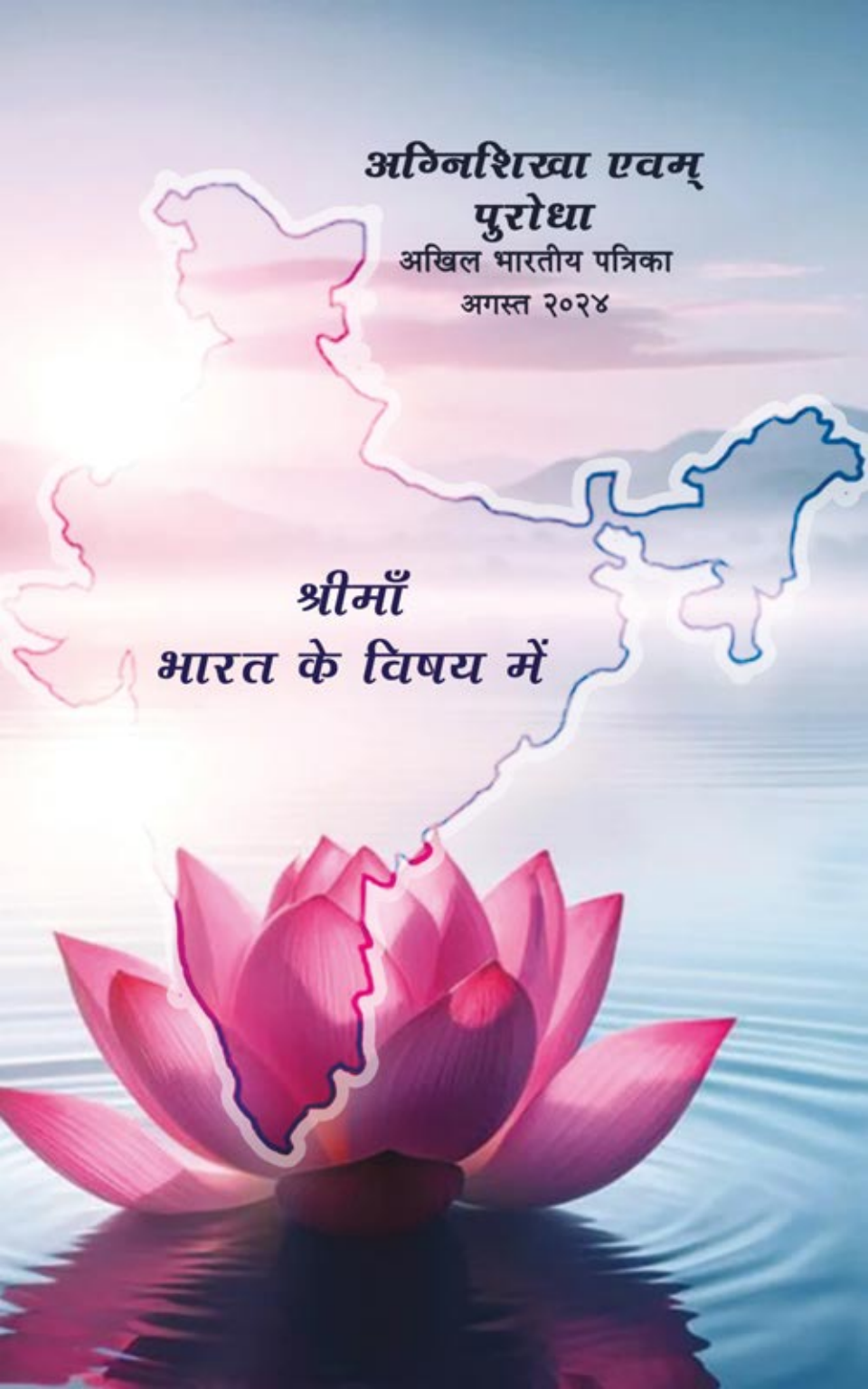

अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

अगस्त २०२४

श्रीमाँ भारत के विषय में

अग्निशिखा एवम् पुरोधा अगस्त २०२४ वर्ष २, अंक १, पूर्णांक १३

विषय-सूची

श्रीमाँ भारत के विषय में
(श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय		३
इस महीने का महत्त्वपूर्ण दिवस (१५ अगस्त)		५
भारत की आत्मा		६
भारत के विषय में टिप्पणियाँ		१२
भारत के बारे में सन्देश		२४
भारत की एकता		३०
भागवत योजना (कविता)	डॉ. सुमन कोचर	३४

पुरोधा

दैनन्दिनी		३५
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : वे सर्वज्ञ हैं	नवजातजी	३८
शाश्वत ज्योति (६)	चित्रा सेन (अनु. वीणा)	४१
सबसे बड़ा धन	'शिशु मन्दिर सन्देश' से	४३
मैं सर्वस्व तेरा! तेरा ही!...	वन्दना	४५
बुझते दीपक का सन्देश	अज्ञात	४९

जीवन के विकसित होने और पुष्पित होने में सहायता देने वाला चिन्तन का शीतल प्रकाश नहीं, बल्कि सत्य का उष्मल एवं जीवनदायी प्रकाश है। यही वह सूर्य है जो संसार पर हर्षपूर्ण किरणें बरसाता है।

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५५वाँ वर्ष चल रहा है।

सन्देश

मधुर माँ,

वर्तमान समय में सर्वत्र इतनी अस्त-व्यस्तता क्यों है? क्या यह ज़्यादा अच्छे परिवर्तन के लिए संकेत है, 'सत्य' के राज्य की ओर?

सारी पृथ्वी पर यह 'सत्य' की शक्ति का दबाव है जो हर जगह अव्यवस्था, अस्त-व्यस्तता और मिथ्यात्व को उछाल रहा है जो रूपान्तरित होने से इन्कार कर रहा है।

'सत्य' की विजय निश्चित है, लेकिन यह कहना कठिन है कि वह कब और कैसे आयेगी।

१४ सितम्बर १९६६ **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृष्ठ ३८४

सम्पादकीय : श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द ने यह देख लिया था कि चीज़ों की भागवत योजना में भारत को कितनी महत्त्वपूर्ण और केन्द्रीय भूमिका निभानी है। लेकिन उसे सम्पन्न करने के लिए भारत को अपना लुप्त ज्ञान, अपनी महिमा तथा शक्ति को पुनः प्राप्त करना, उसकी घोषणा करनी है। इस विषय में उन्होंने बहुत से महत्त्वपूर्ण संकेत और आभास दिये हैं, साथ ही अपने कार्य तथा अपने 'मिशन' के लिए उन्होंने भारत को ही अपने कार्य का केन्द्रीय स्थान चुना।

यह अंक भारत तथा उसकी नियति के श्रीमाँ के अन्तर्दर्शन पर आधारित है, उन्हें ही समर्पित है।

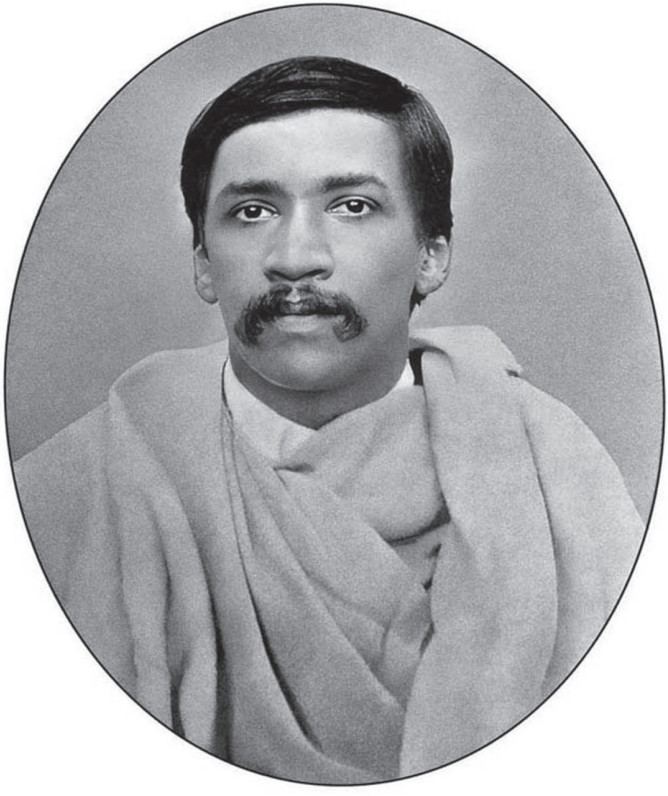

श्रीअरविन्द हमेशा अपनी मातृभूमि से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र और संसार में अपने महान् लक्ष्य के योग्य बने। वे उसे अन्धे, स्वार्थमय और अज्ञानमय पक्षपातों के दूषित और गँवारू स्तर तक डूबने देने से इन्कार करते थे। इसलिए, उनकी सम्पूर्ण इच्छा के अनुसार, हम उन लोगों की परवाह किये बिना—जो अज्ञान, मूर्खता, ईर्ष्या या दुर्भावना के कारण उसे गन्दा करना या कीचड़ में घसीटना चाहते हैं—सत्य, प्रगति और मानव रूपान्तर की ध्वजा को ऊँचा उठाते हैं। हम उसे बहुत ऊँचा उठाते हैं ताकि जिनमें भी अन्तरात्मा है वे उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. १३०-३१

इस महीने का महत्त्वपूर्ण दिवस

१५ अगस्त

भारत का स्वाधीनता-दिवस (१५ अगस्त १९४७) संयोग से श्रीअरविन्द का ७५वाँ जन्म-दिवस था। १५ अगस्त १९४७ को आकाशवाणी द्वारा प्रसारित राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में श्रीअरविन्द ने कहा, "मैं इस संयोग को आकस्मिक घटना के रूप में नहीं बल्कि उस भागवत शक्ति का समर्थन और मोहर मानता हूँ जो उस कार्य में मेरे क़दमों को राह दिखलाती है जिसके साथ मैंने अपना जीवन आरम्भ किया और जो उसकी पूर्ण सिद्धि का आदि चरण था।"

अपने एक शिष्य को एक पत्र में श्रीअरविन्द ने लिखा, "१५ अगस्त सामान्यतः मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से साधना में या जीवन में एक सन्धिकाल या विशिष्ट दिवस है—दूसरों के लिए केवल अप्रत्यक्ष रूप से।"

श्रीमाँ ने आश्रम के 'प्लेग्राउण्ड' में १५ अगस्त १९५६ को अपनी एक वार्ता में कहा, "१५ अगस्त श्रीअरविन्द का जन्मदिन है। इसलिए, भौतिक दृष्टि से धरती के जीवन में यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तिथि है।"

श्रीमाँ ने एक बार १५ अगस्त १९५९ को एक शिष्य को लिखा, "... और अब, आज, मैं तुम्हें पुनः लिख रही हूँ, क्योंकि यह सर्वक्षमाओं का दिवस है, एक ऐसा दिवस जब अतीत की सभी भूलें मिटा दी जाती हैं..."

यह है इस दिवस का महत्त्व, जो आश्रम में चार दर्शन-दिवसों में से एक है।

भारत की आत्मा

भारत की आत्मा चिरंजीवी हो!

*

भारत की आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत संसार में अपने 'मिशन' के बारे में सचेतन है। वह अभिव्यक्ति के बाहरी साधनों की प्रतीक्षा कर रहा है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८१-८२

> ओ भारत की आत्मा, कलियुग के अज्ञानी पण्डितों के पीछे अपने-आपको रसोईगृह और मन्दिर में न छुपा, भावहीन पूजा-पाठ, दक्षिणा की पुरानी विधि और अभिशप्त पैसों के आवरण से अपने-आपको न ढक; बल्कि अपनी आत्मा में खोज कर, भगवान् से प्रार्थना कर, और सनातन वेद के द्वारा अपने सच्चे ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व को पुनः प्राप्त कर; वैदिक यज्ञ के छुपे हुए सत्य को पुनः स्थापित कर, एक प्राचीनतर और अधिक शक्तिशाली वेदान्त को चरितार्थ कर।

इसका अर्थ है कि हमें उन तथाकथित धार्मिक परम्पराओं से मुक्त होना चाहिये जो यह बताती हैं कि हमें क्या करना चाहिये, क्या नहीं। हमें सच्चे ज्ञान को ढूँढ़ना चाहिये तथा सीधे भगवान् से ही सत्य में और सत्य के लिए जीवन बिताने के यथार्थ निर्देशों को प्राप्त करना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३६७

आह्वान

१५ अगस्त १९४७

हे हमारी माँ, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननि, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहाँ तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे माँ, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जाग उठे हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में

तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें वह पथ दिखला जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सम्मुख उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें वह पथ दिखला जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजाति को दिखा सकें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८२

भारत माता

जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी अन्तरात्मा होती है जो उसकी वास्तविक सत्ता है और उसके भविष्य को थोड़े-बहुत प्रत्यक्ष रूप में परिचालित करती है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की भी अन्तरात्मा होती है, उसकी सच्ची सत्ता वही है और वही परदे के पीछे से उसकी भवितव्यता का निर्माण करती है : यही देश की आत्मा है, राष्ट्रीय प्रतिभा है, जाति की भावना है, राष्ट्रीय अभीप्सा का केन्द्र है, किसी देश के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उत्कृष्ट, महान् और उदार होता है उसका मूल स्रोत है। सच्चे देश-भक्त प्रत्यक्ष सत्ता के रूप में इसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं। इसी को भारतवर्ष में एक दिव्य सत्ता का-सा रूप दे दिया गया है; जो लोग अपने देश से सच्चा प्रेम करते हैं वे इसे भारत माता कह कर पुकारते हैं और अपने देश के हित के लिए इसी के सम्मुख अपनी दैनिक प्रार्थना करते हैं। यह भारत माता ही देश के सच्चे आदर्श को, विश्व में उसके सच्चे उद्देश्य को सांकेतिक रूप में व्यक्त करती है, उसे मूर्तिमान् करती है।

भारतवर्ष के कुछ विशिष्ट विचारक तथा अध्यात्मचेता श्रेष्ठ पुरुष तो इसे विश्वमाता की ही एक विभूति मानते हैं, जैसा कि 'दुर्गा-स्तोत्र' से प्रकट होता है। इसके कुछ पदों का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :

"माँ दुर्गे! सिंहवाहिनि, सर्वशक्तिदायिनि, तेरे... शक्ति-अंश से उत्पन्न हम भारत के युवकगण तेरे मन्दिर में आसीन हैं। माँ, हमारी प्रार्थना सुन, तू पृथ्वी पर अवतरित हो, अपने-आपको तू भारत की इस भूमि पर

अभिव्यक्त कर।

"माँ दुर्गे! शक्तिदायिनि, प्रेमदायिनि, ज्ञानदायिनि, सौम्य-रौद्र-रूप-धारिणि माँ! तू अपने शक्ति-स्वरूप में भयंकर है। जीवन-संग्राम में, भारत-संग्राम में हम तेरे ही द्वारा प्रेरित योद्धा हैं; माँ, तू हमारे हृदय में, हमारे मन में असुर की शक्ति दे, हमारी आत्मा और हमारी बुद्धि को देवता का गुण, कर्म और ज्ञान दे।

"माँ दुर्गे! भारत, जगत् की सर्वश्रेष्ठ जाति, घोर तिमिर से आच्छन्न थी। माँ, तू पूर्वगगन में प्रकट हो रही है, तेरे दिव्य अंगों की आभा के साथ-साथ उषा का आगमन हो रहा है और यह अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर रही है। अपने आलोक का विस्तार कर, माँ, अन्धकार का नाश कर।

"माँ दुर्गे! हम तेरी सन्तान हैं, तेरी कृपा से, तेरे प्रभाव से हम महत् कार्य के, महत् आदर्श के योग्य बनें। हमारी क्षुद्रता का, हमारे स्वार्थ का, हमारे भय का तू विनाश कर माँ!

"माँ दुर्गे! तू काली है... हाथ में कृपाण धारण करके तू असुरों का विनाश करती है। देवि! अपने क्रूर निनाद से तू हमारे अन्तः-स्थित शत्रुओं का नाश कर। इनमें से एक भी हमारे अन्दर जीवित न रहे; हम शुद्ध और निर्मल हो जायें—यही हमारी प्रार्थना है; माँ, तू प्रकट हो।

"माँ दुर्गे! भारत स्वार्थ, भय और क्षुद्रता के हीन गर्त में गिरा हुआ है। हमें महान् बना, हमारे प्रयत्नों को महत् रूप दे, हमारे हृदय को विशाल बना, हमें अपने संकल्प के प्रति सच्चा रख। ऐसी कृपा कर कि हम और अधिक उस वस्तु की कामना न करें जो क्षुद्र, निःशक्त, आलस्यपूर्ण तथा भयग्रस्त हो।

"माँ दुर्गे! योगशक्ति का अत्यधिक विस्तार कर, हम तेरी आर्यसन्तान हैं; हमारे अन्दर लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधाशक्ति, श्रद्धा-भक्ति, तपोबल, ब्रह्मचर्यबल और सत्य ज्ञान का पुनः विकास कर—इन सबका जगत् में वितरण कर। हे विश्वजननि, मनुष्य की सहायता के लिए प्रकट हो, अशुभ का नाश कर।

"माँ दुर्गे! अन्तस्थ शत्रुओं का संहार कर, फिर चारों ओर की बाधाओं को निर्मूल कर दे। भद्र, वीर और पराक्रमी भारत-जाति प्रेम और एकता में, सत्य और शक्ति में, शिल्प और साहित्य में, विक्रम और ज्ञान में श्रेष्ठ भारत-जाति अपने पवित्र काननों में, उर्वर खेतों में, गगनचुम्बी पर्वतों के

तले, पूतसलिला नदियों के तीर पर निवास करे। तेरे चरणों में हमारी यही प्रार्थना है, माँ, तू प्रकट हो।

"माँ दुर्गे! अपने योग-बल द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर। हम तेरे यन्त्र बनेंगे, तेरी अशुभनाशक तलवार बनेंगे, तेरा अज्ञानविनाशी प्रदीप होंगे। अपने शिशुओं की इस अभिलाषा को पूर्ण कर, माँ! तू स्वामिनी बन कर अपना यन्त्र चला, तलवार हाथ में लेकर अशुभ का नाश कर, प्रदीप ऊँचा उठा कर ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण कर, तू प्रकट हो।"

हम अन्य देशों में भी राष्ट्रीय आत्मा के लिए इसी प्रकार का आदर-भाव, उसके सर्वोच्च आदर्श की अभिव्यक्ति के लिए योग्य यन्त्र बनने की ऐसी ही अभीप्सा, प्रगति और पूर्णता के लिए ऐसी ही लगन देखना चाहेंगे जो प्रत्येक जाति को अपनी राष्ट्रीय आत्मा के साथ एकाकार होने और इस प्रकार अपने सच्चे स्वरूप और कार्य को जानने के लिए उत्साहित करती है। इससे प्रत्येक मनुष्य, इतिहास की सभी दुर्घटनाओं के होते हुए भी, एक सजीव तथा अमर सत्ता बन जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ४८-५०

भारत क्या है

भारत क्या है?

भारत इस भूमि की मिट्टी, नदियाँ और पहाड़ नहीं है, न ही इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भारत है। भारत एक जीवन्त सत्ता है, इतनी ही जीवन्त जितने कि, कह सकते हैं, शिव। भारत एक देवी है जैसे शिव एक देवता हैं। अगर वे चाहें तो मानव-रूप में भी प्रकट हो सकती हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०६

अति प्राचीन काल से (कुछ विद्वान् कहते हैं ईसा से ८००० वर्ष पहले से) भारत आध्यात्मिक ज्ञान और साधना का देश, 'परम सद्वस्तु' की खोज और उसके साथ ऐक्य का देश रहा है। यह वह देश है जिसने एकाग्रता का सर्वोत्तम और सबसे अधिक अभ्यास किया है। इस देश में जो पद्धतियाँ

सिखायी जाती हैं, जिन्हें संस्कृत में योग कहते हैं, वे अनन्त हैं। कुछ केवल भौतिक हैं, कुछ शुद्ध रूप से बौद्धिक हैं, कुछ धार्मिक और भक्तिपरक हैं; अन्ततः कुछ हैं जो अधिक सर्वांगीण परिणाम प्राप्त करने लिए इन विविध पद्धतियों को मिला देती हैं।

जब तुम्हें सुन्दरता से कतराना सिखाया जाता हो तो इसका अर्थ है कि इसके पीछे असुर का एक बहुत बड़ा अस्त्र क्रियाशील है। इसी ने भारत का विनाश किया है। भगवान् चैत्य में प्रेम, मन में ज्ञान, प्राण में शक्ति तथा भौतिक में सौन्दर्य के रूप में प्रकट होते हैं।

अगर तुम सौन्दर्य का बहिष्कार करो तो तुम भगवान् को भौतिक स्तर पर प्रकट होने से रोकते हो और उस भाग को असुर के हाथ में सौंप देते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०७

(राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू के नाम सन्देश, जब वे आश्रम आये थे)

भारत को अपने 'मिशन' के शिखर तक उठना चाहिये और संसार के आगे 'सत्य' की घोषणा करनी चाहिये।

*

(राष्ट्रपति वी. वी. गिरि जब आश्रम आये थे तो माताजी ने उन्हें यह सन्देश दिया)

आओ, हम सब भारत की महानता के लिए काम करें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८५-८६, ४०२

भारत 'सत्य' के लिए और उसकी विजय के लिए लड़ रहा है और उसे तब तक लड़ते रहना चाहिये जब तक हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर से 'एक' न हो जायें, क्योंकि यही उनकी सत्ता का सत्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९९

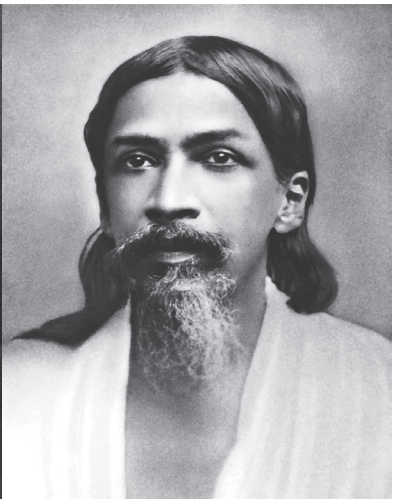

माताजी,

१९१९ में श्रीअरविन्द ने लिखा था कि अव्यवस्था और विपदाएँ शायद नवीन सृष्टि की प्रसव-वेदना हैं। यह प्रसव-वेदना कब तक चलती रहेगी—आश्रम में, भारत में और फिर सारे संसार में?

वह तब तक जारी रहेगी जब तक जगत् नवीन सृष्टि को ग्रहण करने के लिए इच्छुक और तैयार न हो जाये। इस नयी सृष्टि की चेतना इस वर्ष के आरम्भ से ही काम में लगी हुई है।

अगर विरोध करने की जगह लोग सहयोग दें तो काम जल्दी होगा। परन्तु मूढ़ता और अज्ञान बहुत दुराग्रही हैं।

प्रेम और आशीर्वाद।

२९ सितम्बर १९६९

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ४३०-३१

भारत के विषय में टिप्पणियाँ

श्रीअरविन्द का जन्म तथा भारत की स्वाधीनता

श्रीअरविन्द इतिहास के बिलकुल नहीं हैं; वे उसके बाहर, उसके परे हैं।

श्रीअरविन्द के जन्म तक, धर्म और अध्यात्म के पन्थ हमेशा भूतकालीन व्यक्तियों पर आधारित थे और वे "जीवन का लक्ष्य" बताते थे धरती से जीवन के विलय को। तो, तुम्हारे सामने दो विकल्प होते थे: या तो

—इस जगत् **में** ऐसा जीवन जो तुच्छ विलास और पीड़ा, सुख-दुःख का चक्कर होगा और ठीक तरह व्यवहार न करने से नरक का भय रहेगा, या

—यहाँ से किसी और लोक **में** बच निकलना, स्वर्ग, निर्वाण, मोक्ष...।

इन दोनों में से चुनने-लायक़ कुछ भी नहीं है, दोनों समान रूप से ख़राब हैं।

श्रीअरविन्द ने हमें बतलाया है कि यही वह आधारभूत भूल थी जो भारत की दुर्बलता और उसके पतन के लिए ज़िम्मेदार है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, मायावाद देश की समस्त जीवन-शक्ति को सुखा देने के लिए काफ़ी थे।

यह सच है कि आज धरती पर भारत ही एकमात्र देश है जिसे इस बात का भान है कि 'जड़-द्रव्य' के सिवा और भी किसी चीज़ की सत्ता है। अन्य देश—यूरोप, अमरीका आदि—इसे बिलकुल भूल चुके हैं। इसलिए सन्देश अभी तक उसी के पास है, उसे सुरक्षित रखना और दुनिया तक पहुँचाना है। लेकिन अभी तो वह अव्यवस्था में बिखर और छटपटा रहा है।

श्रीअरविन्द ने बतलाया है कि सत्य सांसारिक जीवन से भागने में नहीं, उसके *अन्दर* रह कर, *उसे रूपान्तरित करने* और *उसे दिव्य बनाने में* है ताकि भगवान् **यहाँ, भौतिक जगत्** में अभिव्यक्त हो सकें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २३०

मधुर माँ,

हम देखते हैं कि आजकल सारा जगत् ही असन्तुलन और अस्त-व्यस्तता में है। क्या इसका मतलब यह है कि वह एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति की, सत्य के अवतरण की तैयारी में है या यह इस अवतरण के विरुद्ध विद्रोह करती हुई विरोधी शक्तियों का परिणाम

है? और इसमें भारत का क्या स्थान है?

एक साथ दोनों बातें हैं—तैयारी का अस्त-व्यस्त तरीक़ा। भारत को आध्यात्मिक मार्गदर्शक होना चाहिये जो यह समझाये कि क्या हो रहा है और जो इस गति को तेज़ कर सके। लेकिन दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अन्धी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी अन्तरात्मा की अवहेलना कर रहा है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३६९

मधुर माँ,

श्रीअरविन्द कहते हैं कि कुरुक्षेत्र के महान् युद्ध को हुए पाँच हज़ार वर्ष बीत गये हैं, परन्तु श्रीकृष्ण की राजनीतिक प्रतिभा का सौम्य, हितैषी प्रभाव अभी उस दिन महारानी लक्ष्मीबाई के साथ समाप्त हुआ है। उसके बाद नये सिरे से भारत और संसार की रक्षा करने के लिए एक 'पूर्णावतार' की ज़रूरत थी। यह अवतार उस ब्रह्मतेज को जगायेगा जो अभी सोया हुआ है। श्रीअरविन्द ने यह भी कहा है कि कलियुग में ही पूर्णावतार का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि इस युग में ही मनुष्य के लिए सबसे अधिक संकटहै और वे यहाँ मौजूद हैं! उन्होंने अपने-आप मर्म खोल दिया है: भगवान् पूरी तरह भारत में प्रकट हुए हैं। लेकिन वे इतने विनम्र हैं कि वे यह नहीं बतलाते कि वे स्वयं वह अवतार हैं!

जो कार्य को सम्पादित करते हैं उनमें शेखी बघारने की आदत नहीं होती। वे अपनी ऊर्जा को काम पूरा करने के लिए बनाये रखते हैं और परिणाम का यश शाश्वत प्रभु के लिए छोड़ देते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३०५-०६

माताजी, क्या इस दिन का, १५ अगस्त का कोई गुह्य (या साधारण) अर्थ है? कारण, इतिहास में, इस दिन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं।

तुम्हारा ठीक-ठीक आशय क्या है? १५ अगस्त श्रीअरविन्द का जन्मदिवस

है, अतः, पार्थिव जीवन में, भौतिक दृष्टिकोण से, इस तिथि का बहुत बड़ा महत्त्व है। तो?

१५ अगस्त को अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटीं?...

कौन-सी, भारत की स्वाधीनता? इस कारण कि भारत की स्वाधीनता १५ अगस्त को प्राप्त हुई? और अब, तुम्हें यह बताने की आवश्यकता है कि यह क्यों हुआ, क्या तुम स्वयं इसका पता नहीं लगा सकते? इसे कहने की आवश्यकता है, है क्या? मैं समझती हूँ श्रीअरविन्द ने जो सन्देश दिया था उसमें इसे लिखा भी है, नहीं लिखा है? क्या उन्होंने यह नहीं बताया है?

(मौन)

हाँ, बिलकुल यही बात है...।

आज मेरे हाथ में एक ऐसा 'ग्रीटिंग कार्ड' आया जैसा कि लोग पूजा के अवसरों पर (दुर्गापूजा इत्यादि) या नये वर्ष पर या अन्य ऐसे ही त्योहारों पर भेजते हैं; और इस कार्ड पर कुछ इस प्रकार लिखा था—मुझे ठीक-ठीक शब्द याद नहीं—पर जो हो, वह कुछ इस प्रकार था, "अपने राष्ट्र के इस स्मरणीय जन्मदिवस पर अभिनन्दन।" इसे एक ऐसे व्यक्ति ने भेजा था जिसने, मैं समझती हूँ, बहुत दिन पहले अपने को श्रीअरविन्द का शिष्य घोषित किया था...। यह मुझे एक ऐसा महाअपराध प्रतीत हुआ जिसे करने में एकमात्र मानवीय मूढ़ता ही समर्थ होती है। यदि उसने यह कहा होता: "श्रीअरविन्द के इस स्मरणीय जन्मदिवस *तथा* इसके स्वाभाविक परिणाम, राष्ट्र के जन्मदिवस पर", तो वह बिलकुल ठीक हुआ होता। पर कहाँ, महत्त्वपूर्ण बात छोड़ दी गयी थी और दूसरी का उल्लेख था, जो महज़ एक परिणाम है, एक स्वाभाविक फल है: इसे ऐसा *ही होना था*, यह अन्यथा हो ही नहीं सकता था।

परन्तु लोग सर्वदा इसी ढंग से, ग़लत तरीक़े से सोचते हैं। सर्वदा ही। वे परिणाम को ही कारण मान लेते हैं, वे परिणाम को महत्त्व प्रदान करते हैं और कारण को भूल जाते हैं।

और बस यही कारण है कि संसार सिर नीचे और पाँव हवा में रख कर चलता है। स्पष्ट ही, दूसरा कोई कारण नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३१९-२०

भारत को समझना

"ओह! क्योंकि भारत, जो धर्म का पालना है, जहाँ इतने सारे देवता उसके भाग्य के अधिष्ठाता हैं, उनमें से कौन-सा इस नगर को पुनरुज्जीवित करने का चमत्कार सिद्ध करेगा?"

(१९२८ में पॉण्डिचेरी के बारे में ए. शूमेल के लिखे एक लेख में से)

वह मिथ्या बाह्य छवियों से अन्धा होकर, बदनामियों से धोखा खाकर, भय और पक्षपात की पकड़ में आकर, उस देव के पास से होकर गुज़र गया जिसके हस्तक्षेप का वह आवाहन कर रहा है और जिसे उसने देखा नहीं; वह उन शक्तियों के पास से होकर निकल गया जो वह चमत्कार सिद्ध करेंगी जिसकी वह माँग कर रहा है परन्तु उसमें उन्हें पहचानने की इच्छा न थी। इस भाँति वह अपने जीवन का सबसे बड़ा अवसर खो बैठा—उन रहस्यों और अद्‌भुत चमत्कारों के सम्पर्क में आने का अद्वितीय अवसर खो बैठा जिनके अस्तित्व के बारे में उसके मस्तिष्क ने अनुमान किया है और जिसके लिए उसका हृदय अनजाने ही अभीप्सा करता है।

सदा से अभीप्सुओं को, दीक्षा पाने से पहले, कुछ परीक्षाएँ देनी होती थीं। प्राचीन सम्प्रदायों में ये परीक्षाएँ कृत्रिम होती थीं, और इस कारण वे अपना अधिकतर मूल्य खो बैठती थीं। लेकिन अब ऐसा नहीं है। परीक्षा किसी बहुत ही मामूली, दैनिक परिस्थिति के पीछे छिप जाती है और संयोग और दैवयोग का निर्दोष रूप धारण कर लेती है जिसके कारण वह और भी अधिक कठिन और ख़तरनाक बन जाती है।

भारत अपने ख़ज़ानों का रहस्य उन्हीं के सामने प्रकट करता है जो मन की अभिरुचियों और जाति तथा शिक्षा के पक्षपातों पर विजय पा लें। अन्य जो खोजते हैं उसे न पाकर निराश लौट जाते हैं; क्योंकि उन्होंने उसे ग़लत तरीक़े से खोजा था और 'दिव्य खोज' का मूल्य चुकाने के लिए वे तैयार न थे। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ४०७-०८

भगवान् के साथ ऐक्य से प्राप्त स्वाधीनता ही सच्ची स्वाधीनता है। अपने अहं पर प्रभुत्व पाने के बाद ही तुम भगवान् के साथ एक हो सकते हो। *श्रीमाँ*

ॐ

भारतीय भाषाओं में ॐ शब्द है... जो अद्‌भुत है। जानते हो, भारत के ऋषि-मुनि क्या कहते हैं? यह कि **ॐ** परम प्रभु के द्वारा देखा गया सृष्टि के समस्त स्वरों का समग्र है; वे ॐ को इस रूप में सुनते हैं मानों उन प्रभु का आवाहन किया जा रहा है—विचार के रूप में यह अद्‌भुत-अलौकिक है! प्रतीक के रूप में... *यह केवल प्रतीक नहीं बल्कि एक शक्ति है!*

ओह, ज़बरदस्त शक्ति—प्रचण्ड। जब मैंने इसे पहली बार सुना, पहली बार... बैर्नार नामक कोई व्यक्ति जिन्होंने एक साल भारत में बिताया था—हिमालय में, और उनके पास कई योगी आते थे जिन्हें वे जानते तक नहीं थे (वे हिमालय में, एक झोंपड़ी में एकदम अकेले रहते थे)। एक योगी उनसे मिलने आये; वे बोले नहीं, बस बैर्नार के पास कुछ देर बैठे और फिर उठ कर चले गये। उन योगी ने जाते-जाते उनसे बस एक शब्द कहा, "**ॐ**..." फिर बैर्नार फ़्रांस वापस आ गये, भारत की अनुभूतियाँ उन्होंने सुनायीं और उन्होंने वह बात भी बतायी। उस समय मुझे भारत के बारे में एकदम से कुछ भी पता न था, और जब उन्होंने ॐ शब्द का उच्चारण किया... *(माँ अपने हाथ नीचे की ओर लाती हैं)*, तो इस तरह एक 'शक्ति' आयी, मेरा समग्र, सारा शरीर, सब कुछ एक अद्‌भुत तरीक़े से स्पन्दित होने लगा! यह एक अन्तर्दर्शन के समान था—सब, सब कुछ स्पन्दित होने लगा। फिर मैंने कहा, "अन्ततः यह रही सच्ची ध्वनि!" जब कि मुझे कुछ नहीं पता था, एकदम से कुछ नहीं, न ही मुझे इसका ज्ञान था कि इस ध्वनि का अर्थ क्या है... मैं कुछ नहीं जानती थी।

२४ दिसम्बर १९६९ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

हिंसा

(एक अध्यापक ने श्रीमाँ से कहा कि कक्षा में बच्चों के अन्दर कुछ हिंसा की भावना जाग रही है, उसे कैसे रोका जाये?...)

... हाँ, जब तक मनुष्य अपने अहंकार, अपनी कामनाओं-लालसाओं से शासित होता है, हिंसा आवश्यक होती है। लेकिन हिंसा का प्रयोग केवल अपने बचाव के साधन के रूप में करना चाहिये, अगर कोई तुम पर प्रहार

करने आये तो तुम्हें भी उसका उत्तर देना चाहिये। मानवता जिस दिशा में बढ़ रही है और हम जिसे उपलब्ध करना चाहते हैं वह प्रदीप्त समझ की अवस्था है जो सचमुच प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता और साथ ही धरती का सामञ्जस्य है, और हम इसे ही लाने का प्रयास कर रहे हैं, इसी की ओर हमने यात्रा आरम्भ कर दी है।

भविष्य में हिंसा की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि मनुष्य 'भागवत चेतना' से शासित होगा, उस चेतना में सभी वस्तुएँ सामञ्जस्यपूर्ण हैं, एक-दूसरे की पूरक हैं।

लेकिन अभी तक तो हम उस स्तर पर हैं जहाँ शस्त्रों की आवश्यकता है, वे अनिवार्य हैं। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह संक्रमणकारी अवस्था है, स्थायी नहीं, और हमें स्थायी अवस्था की ओर जाने का यथासम्भव प्रयास करते ही रहना चाहिये।

शान्ति... चेतना के परिवर्तन के साथ-ही-साथ शान्ति तथा सामञ्जस्य प्रतिष्ठित हो जायेंगे।

जानते हो, भारत में अब तक गाँधी की अहिंसावाद की धारणा प्रचलित है, और सचमुच इसी ने भौतिक हिंसा, नैतिक हिंसा को स्थान दिया, अहिंसा, अहिंसा करते-करते हम पता नहीं किस अवस्था में पहुँच गये।...

तुम बच्चों से कह सकते हो कि भौतिक या नैतिक किसी भी प्रकार की हिंसा ग़लत है। नैतिक हिंसा का एक उदाहरण मैं तुम्हें देती हूँ। रेलगाड़ी को रोकने के लिए गाँधी के अहिंसावादियों का रेल की पटरी पर लेट जाना नैतिक हिंसा है जो अन्ततः भौतिक हिंसा से कहीं ज़्यादा अव्यवस्था और नुक़सान पहुँचाती है।

कहने को बहुत कुछ है... अहिंसा और हिंसा का अर्थ कभी-कभी व्यक्तियों के लिए अलग भी हो सकता है। मैं स्वयं तलवारबाज़ी, जिसे अंग्रेज़ी में Fencing sports कहते हैं, के अभ्यास को बहुत प्रोत्साहन देती हूँ, यह हिंसात्मक कला नहीं है, क्योंकि यह व्यक्ति को कौशल, अपनी गतियों पर संयम और हिंसा पर अनुशासन रखना सिखाती है—मैंने निशानेबाज़ी भी सीखी है, मैं बन्दूक से निशाना लगाया करती थी, क्योंकि इससे तुम्हारे अन्दर तल्लीनता और कौशल पनपता है, तुम्हारी दृष्टि में स्थिरता आ जाती है। ये सभी चीज़ें... तुम्हारे अन्दर की विभिन्न कुशलताओं को बाहर ले

आती हैं, यह हिंसा नहीं है, और मेरी समझ में यह नहीं आता कि व्यक्ति को निराशाजनक रूप से अहिंसावादी क्यों बनना चाहिये भला? इससे तो तुम बेपेंदी के लोटे बन कर रह जाओगे!

भले कुछ की दृष्टि में तलवारबाज़ी इत्यादि हिंसात्मक खेल हों, लेकिन इन्हें कला का रूप दिया जा सकता है! यह अचञ्चलता, कौशल और आत्म-संयम को विकसित करने की कला है। गाँधीवादियों की तरह रोष में भर कर इन कलाओं के लिए यह कहना कि 'यह सब निरर्थक है, व्यर्थ है, एकदम से किसी काम का नहीं है' इत्यादि बातों के पक्ष में मैं बिलकुल नहीं हूँ! व्यक्ति को आत्म-रक्षण के साधनों को सीखना चाहिये, इन्हें अपने अन्दर विकसित करना चाहिये।

और सबसे अधिक तो इन अहिंसावादियों को यह सिखलाना चाहिये कि नैतिक हिंसा भौतिक हिंसा के जितनी ही बुरी है। कभी-कभी तो यह उससे बदतर भी हो सकती है। कम-से-कम भौतिक हिंसा तुम्हें बलवान् बनाने, आत्म-संयम इत्यादि सीखने को बाध्य करती है, जब कि नैतिक हिंसा द्वारा... तुम ऊपर से तो शान्त दीख सकते हो, लेकिन अन्दर-ही-अन्दर उबलते रहते हो।...

१८ फ़रवरी १९७३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

कृष्ण तथा गीता

इतिहास की चार अत्यन्त महान् घटनाएँ हैं—'ट्रॉय' नगर का घेरा, ईसा का जीवन और उनका सूली पर चढ़ना, वृन्दावन में कृष्ण का निर्वासन और कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अर्जुन के साथ उनका संवाद। 'ट्रॉय' के घेरे ने हेलास को उत्पन्न किया, वृन्दावन में निर्वासन के कारण भक्ति-मार्ग का उदय हुआ (क्योंकि उससे पहले केवल ध्यान-धारणा और पूजा-अर्चना थी), ईसा ने अपने फाँसी के तख़्ते पर से यूरोप को मानव बनाया, कुरुक्षेत्र का वार्तालाप अब भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करेगा। फिर भी कहा जाता है कि इन चारों में से कोई भी घटना कभी घटी ही नहीं।

१. क्या पुराने समय का ध्यान और पूजा-पाठ हमारे समय के ध्यान

और पूजा-पाठ के समान था?

२. "कुरुक्षेत्र का वार्तालाप अब भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करेगा", इसका क्या अर्थ है?

१. पुराने समय में, जैसा अब भी होता है, प्रत्येक धर्म के ध्यान और पूजा के अपने विशेष तरीक़े होते थे। पर सर्वत्र और सदा ध्यान मानसिक क्रिया और एकाग्रता की एक विशेष पद्धति माना जाता रहा है। केवल उसकी क्रियाओं और छोटी-छोटी बातों में भेद होता है। पूजा का अर्थ है, वे धार्मिक उत्सव और उपचार जो एक सूक्ष्म और पूर्ण यथार्थता के साथ किसी देवता के सम्मान में किये जाते हैं।

यहाँ श्रीअरविन्द प्राचीन भारत की वैदिक और वैदान्तिक समय की पूजा और ध्यान की बात कह रहे हैं।

२. कुरुक्षेत्र के वार्तालाप से उनका मतलब भगवद्गीता से है। श्रीअरविन्द का विचार है कि *गीता* का सन्देश उस महान् आध्यात्मिक आन्दोलन का आधार है जिसने मानवजाति को उसकी मुक्ति का मार्ग दिखाया है तथा दिखायेगा, यानी, जो उसे उसके मिथ्यात्व और अज्ञान से निकाल कर सत्य की ओर ले जायेगा।

जब से *गीता* प्रकट हुई है तभी से उसने एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक कार्य किया है। किन्तु उसकी जो नयी व्याख्या श्रीअरविन्द ने की है उसका प्रभाव अब बहुत अधिक बढ़ गया है और उसने एक निश्चयात्मक रूप धारण कर लिया है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ७१-७२

योग तथा देश-भक्ति

देश-भक्ति के भाव हमारे योग के साथ असंगत नहीं हैं, उलटे, अपनी मातृभूमि की शक्ति और अखण्डता के लिए कामना करना बिलकुल उचित भाव है। यह कामना कि वह प्रगति करे और पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ, अपनी सत्ता के सत्य को अधिकाधिक अभिव्यक्त करे, सुन्दर और उदात्त भाव है जो हमारे योग के लिए हानिकर नहीं हो सकता।

लेकिन तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिये, तुम्हें समय से पहले कर्म में न कूद पड़ना चाहिये। तुम प्रार्थना कर सकते हो और करनी भी चाहिये, सत्य की विजय के लिए अभीप्सा और संकल्प कर सकते हो और, साथ ही, अपने दैनिक कार्य को जारी रख सकते हो और धीरज के साथ ऐसे अचूक चिह्न के लिए प्रतीक्षा कर सकते हो जो तुम्हें कर्तव्य-कर्म का निर्देशन दे।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८७

भारत तथा संसार

हम देखते हैं कि इस समय सारा संसार एक प्रकार के असन्तुलन और अस्त-व्यस्तता की स्थिति में है। क्या इसका यह अर्थ है कि वह अपने-आपको एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए, 'सत्य' के अवतरण के लिए तैयार कर रहा है? या फिर यह अवतरण के विरुद्ध आसुरिक शक्तियों के विद्रोह का परिणाम है? इस सबमें भारत का क्या स्थान है?

दोनों बातें एक साथ हैं। यह तैयारी का एक अस्त-व्यस्त तरीक़ा है। भारत को आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक होना चाहिये जो समझा सके कि क्या हो रहा है, और इस आन्दोलन को छोटा करने में सहायता दे। लेकिन, दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अन्धी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी आत्मा की उपेक्षा कर रहा है।

*

मैं आशा करता हूँ कि काश्मीर की लड़ाई भारत और पाकिस्तान के एक होने की ओर पहला क़दम है।

'परम प्रज्ञा' इस पर नज़र रखे हुए है।

*

माना यह जाता है कि जगत् में आध्यात्मिक जीवन स्थापित करने के लिए भारत संसार का गुरु है। लेकिन, माँ, यह उच्च पद पाने के लिए उसे राजनीतिक, नैतिक और भौतिक दृष्टि से इसके योग्य

होना चाहिये, है न?

निःस्संदेह—और अभी इसके लिए बहुत कुछ करना बाक़ी है!

*

हमारी वर्तमान सरकार की इतनी विशृंखल दशा क्यों है? क्या यह अच्छे के लिए परिवर्तन का, 'सत्य' के शासन के आने का चिह्न है?

समस्त धरती पर 'सत्य' की शक्ति के दबाव के कारण ही हर जगह अव्यवस्था, अस्त-व्यस्तता और मिथ्यात्व उछल रहे हैं जो रूपान्तरित होने से इन्कार कर रहे हैं।

'सत्य' का मार्ग निश्चित है, पर यह कहना मुश्किल है कि वह कब और कैसे आयेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९९-४००

भारत आधुनिक मानवजाति की सभी कठिनाइयों का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि बन गया है।

भारत ही उसके पुनरुत्थान का, एक उच्चतर और सत्यतर जीवन में पुनरुत्थान का देश होगा।

*

सारी सृष्टि में धरती का एक प्रतिष्ठित विशेष स्थान है, क्योंकि अन्य सभी ग्रहों से भिन्न, वह विकसनशील है और उसके केन्द्र में एक चैत्य सत्ता है। उसमें भी, विशेष रूप से भारत भगवान् द्वारा चुना हुआ एक विशेष देश है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ४०१-०२

सरकार तथा राजनीति

(भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के आने पर माताजी ने उन्हें ये सन्देश दिये थे)

भारत भविष्य के लिए काम करे और सबका नेतृत्व करे। इस तरह वह जगत् में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

बहुत पहले से यह आदत चली आयी है कि विभाजन और विरोध के द्वारा शासन किया जाये।

अब समय आ गया है एकता, पारस्परिक समझ और सहयोग के द्वारा शासन करने का।

सहयोगी चुनने के लिए, वह जिस दल का है उसकी अपेक्षा स्वयं मनुष्य का मूल्य ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।

राष्ट्र की महानता अमुक दल की विजय पर नहीं, बल्कि सभी दलों की एकता पर निर्भर है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०२-०३

स्त्रियाँ तथा भारत की भूमिका

... हम एक ऐसे संसार का स्वप्न देखते हैं जिसमें अन्ततः, ये सब विरोध विलीन हो जायेंगे, जहाँ केवल एक ऐसी सत्ता ही जीवित रह सकेगी तथा उन्नति को प्राप्त होगी जो उस सबका, जो मानव-सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है, सामञ्जस्यपूर्ण समन्वय होगी और जो अखण्ड चेतना एवं क्रिया में, विचार एवं कार्यान्विति में, अन्तर्दृष्टि एवं सृजन में एकत्व लाभ कर लेगी।

जब तक समस्या का यह सुखद और आमूल समाधान नहीं हो जाता, भारतवर्ष और बातों की भाँति इस बात में भी उन प्रचण्ड विरोधात्मक भेदों का देश रहेगा जिन्हें फिर भी एक अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत समन्वय में परिणत किया जा सकता है।

वस्तुतः, क्या भारतवर्ष में ही उस परम जननी की अत्यधिक प्रगाढ़ भक्ति और पूर्ण उपासना नहीं की जाती जो विश्व को बनाने वाली और शत्रुओं पर विजय पाने वाली है, जो समस्त देवताओं और समस्त जगतों की माता है, सकल-वरदायिनी है?

और क्या भारत में ही हम स्त्री-तत्त्व, 'प्रकृति' अर्थात् 'माया' की अत्यन्त आमूल रूप में निन्दा और उसके प्रति अत्यधिक घृणा प्रदर्शित होते नहीं देखते, क्योंकि वह एक विकारजनक भ्रम है तथा समस्त दुःख और पतन का कारण है, अर्थात्, ऐसी 'प्रकृति' है जो विमोहित और कलुषित करती है तथा व्यक्ति को भगवान् से दूर ले जाती है?

भारतवर्ष का सारा जीवन ही इस विरोध से सराबोर है; वह अपने

मन और हृदय, दोनों में इससे पीड़ित है। यहाँ, सर्वत्र, मन्दिरों में देवियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, माँ दुर्गा से ही भारतवर्ष की सन्तानें मुक्ति और मोक्ष की आशा करती हैं। और फिर भी एक भारतवासी ने ही यह कहा है कि अवतार कभी स्त्री के शरीर में जन्म नहीं लेगा, क्योंकि तब कोई विचारवान् हिन्दू उसे न पहचान पायेगा! पर यह प्रसन्नता की बात है कि भगवान् इस संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना से प्रभावित नहीं होते और न ही इन तुच्छ विचारों द्वारा प्रेरित होते हैं। जब पार्थिव शरीर में अवतरित होने की उनकी इच्छा होती है तो वे इस बात की परवाह कम ही करते हैं कि लोग उन्हें पहचानेंगे या नहीं। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सब अवतारों में उन्होंने विद्वानों की अपेक्षा बच्चों और सरल हृदयों को अधिक पसन्द किया है।

बहरहाल, जब तक एक ऐसी नयी जाति को, जिसे प्रजनन की आवश्यकता के अधीन होने की ज़रूरत न हो और जो सत्ता के दो पूरक लिंगों में विभाजित होने के लिए बाध्य न हो, उत्पन्न करने के लिए प्रकृति को प्रेरित करने वाला नया विचार एवं नयी चेतना प्रकट नहीं हो जाते, तब तक वर्तमान मानवजाति की उन्नति के लिए अधिक-से-अधिक यही किया जा सकता है कि पुरुष और स्त्री दोनों के साथ पूर्ण समानता का व्यवहार किया जाये, दोनों को एक ही शिक्षा तथा प्रशिक्षा दी जाये तथा दिव्य सत्ता के साथ, जो कि समस्त लिंग-भेदों से ऊपर है, सतत सम्पर्क स्थापित करके समस्त सम्भावनाओं और समस्त समस्वरताओं के उद्‌गम को प्राप्त किया जाये।

और तब शायद भारतवर्ष, जो विषमताओं का देश है, नयी उपलब्धियों का देश बन जायेगा, जैसे यह इनकी परिकल्पना का पालना रहा है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ११४-१५

भारत यौगिक ज्ञान का अभिरक्षक रहा है, लेकिन उसके इस ज्ञान पर भौतिकवाद का परदा पड़ गया है। श्रीअरविन्द ने उसे जगा दिया है और अब इस ज्ञान को बस सर्वत्र फैलना है।

श्रीमाँ

भारत के बारे में सन्देश

२३ सितम्बर १९६७

('आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी के उद्घाटन के अवसर पर प्रसारित सन्देश)

"हे भारत, ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश!
संसार में अपने सच्चे लक्ष्य के प्रति जागो,
ऐक्य और सामञ्जस्य की राह दिखलाओ।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०१

भारत के लिए सन्देश

सच्चे, साहसी, सहनशील और ईमानदार होकर ही तुम अपने देश की अच्छी-से-अच्छी सेवा कर सकते हो, उसे एक और संसार में महान् बना सकते हो।

('भारत के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण संघ' के लिए सन्देश)

संसार के कल्याण के लिए भारत की रक्षा होनी ही चाहिये क्योंकि केवल वही विश्व-शान्ति और नयी विश्व-व्यवस्था की ओर ले जा सकता है।

*

केवल 'भागवत शक्ति' ही भारत की सहायता कर सकती है। अगर तुम देश में श्रद्धा और समस्वरता पैदा कर सको तो यह किसी भी मनुष्य-निर्मित शक्ति से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली होगी।

*

भारत और संसार की रक्षा करने के लिए सम्बद्ध इच्छा-शक्तिवालों का एक बलवान् समुदाय होना चाहिये जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान भी हो। भारत ही संसार में 'सत्य' को ला सकता है। भारत पश्चिम के जड़वाद की नक़ल करके नहीं, 'भागवत शक्ति' और उसके 'संकल्प' को अभिव्यक्त करके ही संसार को अपना सन्देश सुना सकता है। 'भागवत इच्छा' का

अनुसरण करके ही भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर चमकेगा, 'सत्य' का मार्ग दिखायेगा और विश्व-ऐक्य का संगठन करेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८३-८४

भारत को जगत् का आध्यात्मिक नेता *होना चाहिये*। अन्दर तो उसमें क्षमता है, परन्तु बाहर... अभी तो सचमुच जगत् का आध्यात्मिक नेता बनने के लिए बहुत कुछ करना बाक़ी है।

अभी तुरन्त ऐसा अद्‌भुत अवसर है! परन्तु...

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४००-०१

भारत के पास *आत्मा* का ज्ञान है या यूँ कहें, *था*, लेकिन उसने जड़द्रव्य की अवहेलना की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिम के पास जड़द्रव्य का ज्ञान है पर उसने 'आत्मा' को अस्वीकार किया और इस कारण बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

पूर्ण शिक्षा वह होगी जो, कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ, संसार के सभी देशों में अपनायी जा सके। उसे पूर्णतया विकसित और उपयोग में लाये हुए जड़द्रव्य पर 'आत्मा' के वैध अधिकार को वापस लाना होगा।

मैं जो कहना चाहती थी उसका संक्षेप यही है।

आशीर्वाद सहित। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ३९५

भारत को फिर से अपनी आत्मा को पाना और अभिव्यक्त करना होगा।

*

आपने अपने एक सन्देश में कहा है:

"भारत की पहले नम्बर की समस्या है, अपनी आत्मा को फिर से पाना और अभिव्यक्त करना।"

भारत की आत्मा को कैसे पाया जाये?

अपने चैत्य पुरुष के बारे में सचेतन होओ। ऐसा करो कि तुम्हारा चैत्य पुरुष भारत की 'आत्मा' में तीव्र रुचि ले और उसके लिए सेवा-वृत्ति से अभीप्सा करे; और अगर तुम सच्चे हो तो सफल हो जाओगे।

*

भारत वह देश है जहाँ चैत्य के विधान का शासन **हो सकता है** और **होना चाहिये** और अब **यहाँ** उसका समय आ गया है। इसके अतिरिक्त, इस देश के लिए, जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य के प्रभाव और आधिपत्य के कारण विकृत हो गयी है, यही एक सम्भव निस्तार है। हर चीज़ के बावजूद, उसके पास एक अनोखी आध्यात्मिक परम्परा है।

आशीर्वाद।

*

('आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित सन्देश)

हम प्रकाश और सत्य के सन्देशवाहक होना चाहते हैं। सामञ्जस्यपूर्ण भविष्य जगत् के सामने उद्घोषित होने के लिए तैयार खड़ा है।

समय आ गया है जब भय द्वारा शासन करने की आदत के स्थान पर प्रेम का शासन आये।

*

(माताजी के जन्मदिन २१ फरवरी, १९७१ को 'आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित सन्देश)

सच्ची स्वाधीनता ऊपर उठती हुई गति है जो निम्न वृत्तियों के आगे नहीं झुकती।

सच्ची स्वाधीनता एक भागवत अभिव्यक्ति है।

हम भारत के लिए सच्ची स्वाधीनता चाहते हैं ताकि वह संसार के सामने इस बात का उचित उदाहरण बन सके कि मानवजाति को क्या होना चाहिये?

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०३-०५

सत्य और सत्य की विजय के लिए भारत लड़ रहा है और उसे तब तक लड़ते जाना चाहिये जब तक कि भारत और पाकिस्तान फिर से एक न हो जायें क्योंकि यही उनकी सत्ता का सत्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ३६८

माताजी,

भारत की राजनीतिक और आर्थिक अवस्था दिन-पर-दिन बेतुकी होती जा रही है। कृपया भारत की भारतीयों से रक्षा कीजिये और हमें अपनी कृपा का योग्य पात्र बनाइये।

भागवत कृपा अद्‌भुत और सर्वशक्तिमान् है।

और प्रभु के कार्य करने के तरीक़े आनन्दमय और विनोदपूर्ण होते हैं...

प्रेम और आशीर्वाद। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ. ३८४-८५

(बांगला देश की लड़ाई के दिनों में, माताजी ने ये सन्देश दिये थे।)

अवस्था गम्भीर है। कोई शक्तिशाली और प्रबुद्ध क़दम ही देश को इसमें से निकाल सकता है।

आशीर्वाद।

(निम्नलिखित सन्देश आश्रम में इस भूमिका के साथ बाँटा गया था: "देश के वर्तमान संकट के समय सब लोगों के लिए श्रीमाँ का दिया हुआ मन्त्र।")

परम प्रभो, शाश्वत सत्य
वर दे कि हम तेरी ही आज्ञा का पालन करें
और 'सत्य' के अनुसार जियें।

*

भारत संसार में अपना सच्चा स्थान तभी पायेगा जब वह पूर्ण रूप से 'भागवत जीवन' का सन्देशवाहक बन जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०५-०६

(भारत सरकार का शिक्षा-आयोग आश्रम आया था, उसके नाम सन्देश)

भारत सरकार को एक बात जाननी ज़रूरी है—क्या वह भविष्य के लिए

जीना चाहती है, या अतीत के साथ भीषण रूप से चिपकी रहना चाहती है?

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०१

भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत संसार का गुरु है। संसार की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवित-जाग्रत् आत्मा है। भारत संसार में आध्यात्मिक ज्ञान को जन्म दे रहा है। भारत सरकार को चाहिये कि इस क्षेत्र में भारत के महत्त्व को स्वीकार करे और अपने कार्यों की योजना उसी के अनुसार बनाये।

*

जब घातक युद्ध में से विजयी होकर निकलता हुआ भारत अपनी क्षेत्रीय अखण्डता को फिर से पा लेगा, जब उससे अधिक घातक नैतिक संकट में से विजयी होकर—क्योंकि नैतिक संकट शरीर को मारने की जगह आत्मा के सम्पर्क को नष्ट कर देता है जो और भी ज़्यादा दुःखद है—भारत संसार में अपने सच्चे स्थान और अपने उद्देश्य को पा लेगा, तब सरकारों और राजनीतिक स्पर्धाओं के ये तुच्छ झगड़े, जो पूरी तरह से निजी हितों और महत्त्वाकांक्षाओं से भरे हैं, अपने-आप ही एक न्यायसंगत और प्रकाशमयी सहमति में बदल जायेंगे।

*

(१ नवम्बर १९५४ को पॉण्डिचेरी और भारत के अन्य फ़रासीसी क्षेत्र भारत के साथ मिला दिये गये। इस अवसर को मनाने के लिए सवेरे ६.२० पर माताजी का प्रतीक लिये एक ध्वजा आश्रम पर फहरायी गयी। उस समय माताजी ने निम्न सन्देश पढ़ा।)

हमारे लिए १ नवम्बर का गहरा अर्थ है। हमारे पास एक ध्वजा है जिसे श्रीअरविन्द ने 'संयुक्त भारत की आध्यात्मिक ध्वजा' कहा है। उसका वर्गाकार, उसका रंग, उसके डिज़ाइन के हर एक ब्योरे का प्रतीकात्मक अर्थ है। यह ध्वजा १५ अगस्त, १९४७ को फहरायी गयी थी जब भारत स्वाधीन हुआ था। अब यह पहली नवम्बर को फहरायी जायेगी जब ये बस्तियाँ भारत के साथ एक हो रही हैं और भविष्य में जब कभी भारत को अपने अन्य भाग मिलेंगे, यह फहरायी जायेगी। संसार में अखण्ड भारत

को एक विशेष 'मिशन' पूरा करना है। श्रीअरविन्द ने इसके लिए अपना जीवन होम दिया और हम भी यही करने के लिए तैयार हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८४-८५

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि भारत की भारतीय लोगों से रक्षा कीजिये।

हाँ, यह ज़रूरी-सा मालूम होता है।

*

वर्तमान अन्धकार और उदासी के बावजूद भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८४-८६

सच्ची आध्यात्मिकता जीवन से संन्यास नहीं है, बल्कि 'दिव्य पूर्णता' के साथ जीवन को पूर्ण बनाना है।

अब भारत को चाहिये कि संसार को यह दिखलाये।

*

वर्तमान आपत्काल में हर भारतीय का क्या कर्तव्य है?

अपने तुच्छ, स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व से बाहर निकलो और अपनी भारतमाता के योग्य शिशु बनो। अपने कर्तव्यों को सच्चाई और ईमानदारी के साथ पूरा करो और 'भागवत कृपा' में अडिग विश्वास रखते हुए हमेशा प्रफुल्ल और विश्वासपूर्ण बने रहो।

*

भारत की सच्ची नियति है जगत् का गुरु बनना।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८८-८९

हमारा उद्देश्य भारत के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति नहीं, बल्कि समस्त संसार के लिए शिक्षा-पद्धति है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९२

भारत की एकता

भारत के विभाजन के बारे में

(२ जून १९४७ को उस समय के वायसरॉय लॉर्ड माउंटबैटन ने भारत के विभाजन के बारे में घोषणा की जिसमें पाकिस्तान के अतिरिक्त भारत के कुछ प्रान्तों को हिन्दू-मुस्लिम प्रान्त घोषित किया गया। इसे सुनने के बाद माताजी ने निम्न वक्तव्य दिया।)

भारत की स्वाधीनता को सुसंगठित करने में हमारे सामने जो कठिनाइयाँ दिखायी दे रही हैं उनका समाधान करने के लिए एक प्रस्ताव रखा गया है और भारत के नेता उसे काफ़ी कड़वाहट-भरे दुःख के साथ और हृदय को थामते हुए स्वीकार रहे हैं।

परन्तु क्या तुम जानते हो कि यह प्रस्ताव हमारे सामने क्यों रखा गया है? यह हमें यह दिखाने के लिए रखा गया है कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

और क्या तुम जानते हो कि इस प्रस्ताव को हमें क्यों स्वीकार करना होगा? हमें अपने सामने यह साबित करने के लिए स्वीकार करना होगा कि हमारे झगड़े कितने हास्यास्पद हैं।

स्पष्ट है कि यह कोई समाधान नहीं है; यह एक प्रकार की परीक्षा है, एक अग्निपरीक्षा है, जिसमें, अगर हम पूरी सच्चाई के साथ उत्तीर्ण हो जायें तो यह हमें सिद्ध करके दिखा देगी कि किसी देश को टुकड़े-टुकड़े करके हम उसमें एकता नहीं स्थापित कर सकते, उसे महान् नहीं बना सकते; विभिन्न विरोधी स्वार्थों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके उसे हम समृद्ध नहीं बना सकते; एक मतवाद को दूसरे मतवाद के विरोध में उपस्थित कर हम 'सत्य' की सेवा नहीं कर सकते। इस सबके बावजूद, भारत की एक ही आत्मा है और जब तक ऐसी अवस्था नहीं आ जाती कि हम एक भारत की, एक और अखण्ड भारत की बात कह सकें, तब तक हमें बस, यही रट लगानी चाहिये :

भारत की आत्मा चिरंजीवी हो!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८१

केवल भारत की आत्मा ही इस देश को एक कर सकती है।

बाह्य रूप में भारत के प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषा, सभी दृष्टियों से बहुत अलग-अलग हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का प्रयत्न केवल विनाशकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। वह आध्यात्मिक सत्य, सृष्टि की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य मूल के प्रति अभीप्सा में तीव्र है, और इस अभीप्सा के साथ एक होकर सारा देश अपने ऐक्य को फिर से पा सकता है। उस ऐक्य का अस्तित्व प्रबुद्ध मानस के लिए कभी समाप्त नहीं हुआ।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०२

एक संस्मरण

(प्रणव-दा का एक संस्मरण — जिन्हें हम छोटे-बड़े सभी दादा बुलाया करते थे।)

भारत १९४७ में स्वतन्त्र हुआ। सारे देश में उत्सव का बोलबाला था— आतिशबाज़ियाँ, रोशनियाँ, सवेरे प्रभात-फेरियाँ, इत्यादि।

इस दौरान मैंने श्रीमाँ से अपने राष्ट्रीय झण्डे तथा राष्ट्रीय गान के बारे में बातचीत की। मैंने उनसे कहा कि हालाँकि 'वन्दे मातरम्' राष्ट्रीय स्तोत्र था, जन-गण-मन को 'बैण्ड' पर राष्ट्रीय गान की तरह बजाना चाहिये। माँ ने कहा कि वन्दे मातरम् मात्र गान नहीं, मन्त्र है। हमने उनके सम्मुख रवीन्द्रनाथ ठाकुर के वन्दे मातरम् की तथा जन-गण-मन की संगीतमयी प्रस्तुतियाँ बजायीं। उसके बाद मैंने वन्दे मातरम् की तिमिरबरन की प्रस्तुति उन्हें सुनायी। माँ ने तिमिरबरन की प्रस्तुति को अधिक पसन्द किया। बैण्डवालों के लिए भी वह ज़्यादा अनुकूल था। हमारे यहाँ की सहाना दी ने उसके बोलों को संगीत में ढाल दिया और जब हमने वह माँ के सामने गाया तब वे बहुत प्रसन्न हुईं, उन्हें वह बहुत अच्छा लगा।...

तो, हम आश्रम के शारीरिक प्रदर्शन के वार्षिक कार्यक्रम तथा अन्य समयों पर भी, वन्दे मातरम् के उसी गीत से आरम्भ करते हैं और जन-गण-मन के संगीत से समापन।

उस समय मैंने माँ से राष्ट्रीय झण्डे के बारे में भी बातचीत की थी। स्वाधीनता पाने से ठीक पहले भारत सरकार ने कई व्यक्तियों तथा कई

संस्थाओं से राष्ट्रीय झण्डे का डिज़ाइन बनाने के लिए कहा था। आश्रम से जयन्तीलाल ने भी माँ के कहे अनुसार डिज़ाइन बना कर भेजा था। अन्ततः भारत सरकार ने राष्ट्र के प्रतिनिधित्व के रूप में तिरंगा चुना। बीच के 'चरखे' की जगह 'अशोक चक्र' ने ले ली। तिरंगे में ऊपर नारंगी, बीच में सफ़ेद और नीचे हरा था। तीन रंग स्वतन्त्रता, शन्ति तथा प्रगति के प्रतिनिधि थे। बीच का धर्म-चक्र गति तथा ऐक्य का प्रतीक था।

राष्ट्रीय झण्डे को देख कर माँ ने हमसे कहा था कि चक्र केवल बीच के सफ़ेद में ही है और चूँकि यह बाक़ी दो रंगों को नहीं छू रहा इसलिए भारत के सभी सम्प्रदायों के पूर्ण जीवन को, उनकी क्रियाओं और उनकी एकता को प्रतीकात्मक रूप में विशेषतः चित्रित नहीं किया गया है। उन्होंने सोचा कि यह भारत की एकता तथा अखण्डता को प्रतीकात्मक रूप में स्थिर बनाने में सहायता नहीं देगा। इस झण्डे को देख कर लगता है कि भारत की एकता कुछ विक्षुब्ध है। अगर केन्द्र का चक्र तीनों रंगों को लिये रहता तो कहीं अधिक अच्छा होता।...

अब अगर हम उसके बारे में सोचें तो पता लगता है कि उन्होंने सत्य ही कहा था। बहरहाल, श्रीमाँ ने निरन्तर यह भी दोहराया है कि उनकी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा भारत फिर से महान् बन जायेगा। और एक दिन वह पृथ्वी के भविष्य का मार्ग दर्शायेगा। भारत जगत् का गुरु बनेगा।

स्वतन्त्रता के पहले भारत-विभाजन ने माँ को बहुत दुःख पहुँचाया। लेकिन उन्होंने कहा : "श्रीअरविन्द ने कहा है कि भारत दोबारा एक होगा।" माँ ने इसके बारे में कहा था :

"भारत एक बड़ा पतीला है जिसमें सभी स्थानों से सामग्रियाँ लेकर डाली गयी हैं ताकि एक बढ़िया भोज तैयार किया जा सके।"

प्रणव दा : 'I remember' पुस्तक से

परम प्रभो, परम सत्य,
हम केवल तेरी ही आज्ञा मानें
और सत्य के अनुसार
जीवन यापन करें।

श्रीमाँ

२९ जुलाई १९६४

("माताजी के भारत के मानचित्र" के बारे में, जिसमें पाकिस्तान, नेपाल, सिक्किम, भूटान, बांगला देश, बर्मा और श्रीलंका भी शामिल हैं। यहाँ "विभाजन" का मतलब है भारत और पाकिस्तान का विभाजन।)

यह मानचित्र विभाजन के बाद बना था।

यह सब तरह के अस्थायी रूपों के बावजूद सच्चे भारत का मानचित्र है, और यही हमेशा सच्चे भारत का मानचित्र रहेगा, लोग इसके बारे में कुछ भी क्यों न सोचें।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९२

भागवत योजना

संक्रमण के दौर से गुज़र रही धरती,
जीर्ण, पुराने और नये का चल रहा युद्ध।
पुराना अड़ा हुआ अपनी ज़िद पर,
नया चुपके से आ पहुँचा पृथ्वी-जीवन पर।

यूँ मानों भविष्य सीधा ही बिना दस्तक दिये,
वर्तमान में दबे पाँव घुस आया।
नयी दुनिया जन्म ले चुकी धरती पर,
किन्तु मानव है अभी बहुत ही दुर्बल।
उसे नये तौर-तरीक़े मान्य नहीं,
पुराने भी उसके किसी काम के नहीं।
किन्तु नया अन्दर है,
अन्दर पनपने का कर रहा प्रयास,
उसने स्वयं नयी राह खोली और रच दिया इतिहास।
जिस पर कभी नहीं पड़े थे मानव के पग
लगता है घोर संकट पर पड़ गये विजय के डग
महाविजय तो अभी आनी शेष है,
उसके लिए तो एक बड़ा युद्ध लड़ना होगा।
बड़ा झटका सहने को तैयार होना होगा।
महाविजय या महाविनाश की क्या औक़ात?
जब हैं परम प्रभु तेरे साथ और जब तू है प्रभु के हाथ।
यह तो है एक सुनियोजित भागवत योजना का अंग,
अन्तरात्मा को तेरी सत्ता का सच्चा नेतृत्व देने का अपना ढंग।
घनघोर अन्धकार में खोल अपनी अन्तःदृष्टि,
भगवान् हैं तेरी नींव, भगवान् ही मंज़िल और सृष्टि।

—रचनाकार, डॉ. सुमन कोचर

दैनन्दिनी

अगस्त

१. हमेशा अपने अन्दर की अभीप्सा पर बल दो, उसे हृदय में गहराई और स्थिरता पाने दो; मन तथा प्राण की बाहरी बाधाएँ हृदय के प्रेम तथा अभीप्सा के विकास के साथ-साथ अपने-आप ही पीछे हट जायेंगी।

२. हम ज्योति और सत्य के सन्देशवाहक होना चाहते हैं। सामञ्जस्यमय भविष्य दुनिया के सामने अपनी घोषणा करने के लिए हमारे द्वार खटखटा रहा है। समय आ गया है कि भय के द्वारा शासन करने की पुरानी आदत का स्थान प्रेम द्वारा शासन ले ले।

३. तुम जो भी करो, हमेशा उससे अच्छा करने की सम्भावना रहती है। और प्रगति का अर्थ यही है—अधिकाधिक अच्छे की सम्भावना।

४. निरन्तर आन्तरिक विकास होते रहने पर ही मनुष्य जीवन में सतत नवीनता और अक्षय रस पा सकता है। और कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं है।

५. आजकल सचमुच एक व्यापक सड़ान्ध और विघटन का काल है। ऐसे काल में निरुत्साहित हुए बिना जीवन बिताने के लिए हमारे अन्दर एक शान्त-स्थिर हृदय, एक सुनिश्चित संकल्प और सम्पूर्ण आत्म-त्याग का भाव होना चाहिये तथा हमारी आँखें निरन्तर परात्पर की ओर लगी रहनी चाहियें।

६. हमेशा हमारी सत्ता में कहीं पर कोई ऐसी चीज़ होती है जो अपने-आपको धोखा देना पसन्द करती है, अन्यथा ज्योति सर्वदा विद्यमान है, सर्वदा पथ दिखाने के लिए प्रस्तुत है; पर तुम उसे न देखने के लिए अपनी आँखें बन्द कर लेते हो।

७. इस बात के प्रति हमेशा सचेत रहो कि तुम सदैव स्थिर और शान्त बने रहो और अपनी सत्ता में एक सर्वांगीण समता को अधिकाधिक पूर्ण रूप से स्वयं को प्रतिष्ठित करने दो। अपने मन को बहुत अधिक सक्रिय या विक्षोभ में न रहने दो, चीज़ों के सतही दृष्टिकोण से निष्कर्षों

पर न कूद पड़ो। हमेशा समय लो, एकाग्र होओ और अचञ्चलता में ही निश्चय करो।

८. उन क्षणों में, जब मेरे विचार तेरी ओर उड़ान भरते हैं तथा तेरे साथ एक होते हैं, सब कुछ कितना सुन्दर, कितना विशाल, कितना सरल और शान्त हो जाता है। जिस दिन इस परम स्वच्छ दृष्टि को सतत रूप से बनाये रखना हमारे लिए सम्भव हो जायेगा, उस दिन से हम जीवन में कैसे द्रुत और निश्चित पगों से समस्त बाधाओं को लाँघ कर, निस्संकोच आगे बढ़ते जायेंगे!

९. सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कि मनुष्य का मन शान्ति को पाने का अधिकारी न हो जाये।

१०. समर्पण एक निर्णय है जो अपने जीवन का दायित्व भगवान् के हाथों में सौंपने के लिए किया जाता है।

११. हमें जीतना है उस अज्ञान के प्रतिरोध को जो प्रकृति का रूपान्तर नहीं चाहता।

१२. सीखने से प्रेम वह सबसे अधिक मूल्यवान् उपहार है जो हम किसी बच्चे को दे सकते हैं, हमेशा और हर जगह सीखना।

१३. तुम्हें अपने दयनीय व्यक्तित्व के तंग बन्धनों को तोड़ कर निःस्वार्थ आनन्द में ऊँची उड़ान भरनी चाहिये...।

१४. हमेशा सच बोलना कुलीनता की उच्चतम उपाधि है।

१५. तुम जो कुछ देखो उससे परेशान या निराशा न होओ। अगर कोई विकार नज़र आये तो उसे पूरी अचञ्चलता के साथ देखो और उससे छुटकारा पाने के लिए अधिक शक्ति और अधिक प्रकाश की पुकार करो।

१६. जब तुम सत्ता के उस भाग में स्थायी शान्ति और समता ले आओ जो दुराग्रही है तो ग़लत क्रियाओं से छुटकारा पाना ज़्यादा आसान होता है।

१७. कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि तुम्हारे अन्दर सम्भावनाएँ हैं। अगर जीवन में सब कुछ आसान होता तो वह व्यर्थ का जीवन होता।

१८. जिसका मन भगवान् के लिए तरस रहा है वह खाने-पीने जैसे नगण्य मामलों को महत्त्व नहीं दे सकता।

१९. मानवजाति की प्रशंसा या निन्दा को कौओं की "काँव-काँव" समझ कर उसके बारे में उदासीन रहो।

२०. निरन्तर आन्तरिक विकास होते रहने पर ही मनुष्य जीवन में सतत नवीनता और अक्षय पस पा सकता है। और कोई सन्तोषजनक उपाय नहीं है। *—श्रीअरविन्द*

२१. संकट और जोखिम प्रगति का भाग होते हैं। उनके बिना, कभी कोई चीज़ आगे न बढ़ेगी; इसके अतिरिक्त, ये उन लोगों के चरित्र-निर्माण के लिए अनिवार्य हैं जो प्रगति करना चाहते हैं।

२२. तुम्हारा मन तुम्हारे सामने जो आदर्श रखता है उसे व्यवहार में लाना तुम्हारे हाथ में है।

२३. हे विश्व के परम प्रभो, हम याचना करते हैं कि हमें वह शक्ति और सुन्दरता, वह सामञ्जस्यमयी पूर्णता दे जो धरती पर तेरा दिव्य यन्त्र बनने के लिए ज़रूरी हैं।

२४. अगर तुम यह नहीं चाहते कि तुम्हारा शरीर तुम्हें धोखा दे तो अपनी शक्तियों को व्यर्थ की हलचल में नष्ट करने से बचो। तुम जो कुछ भी करो शान्त, प्रकृतिस्थ, सन्तुलित होकर करो। शान्ति और नीरवता में ही सबसे बड़ी शक्ति है।

२५. अनुशासन—यह व्यवस्था की अनिवार्य शर्त है।
उत्साह—यह सफलता की आवश्यक शर्त है।

२६. मैं फिर से दोहराती हूँ कि हमारे लिए आध्यात्मिक जीवन का अर्थ भौतिक द्रव्य का तिरस्कार नहीं, उसे दिव्य बनाना है। हम शरीर को त्यागना नहीं, रूपान्तरित करना चाहते हैं।

२७. यह कभी न कहो, "मेरे पास भगवान् को देने के लिए कुछ भी नहीं है।" देने के लिए हमेशा कुछ होता है, तुम हमेशा अपने-आपको अधिक अच्छे और अधिक पूर्ण रूप में दे सकते हो।

२८. जो अन्धकार और मिथ्यात्व पर सत्य की ज्योति की विजय में सहायक होना चाहते हैं वे अपनी गतिविधि और क्रियाओं को आरम्भ करने वाले आवेगों का सावधानी से अध्ययन करें और उनमें सत्य और असत्य से आने वाले आवेगों में विवेक करना सीखें ताकि सत्य से आने वालों के अनुसार चलें और दूसरों को अस्वीकार करें, त्याग दें।

२९. पवित्र होने का अर्थ है, केवल परम प्रभु के प्रभाव की ओर खुले रहना, और किसी की ओर नहीं।

३०. किसी देश की महानता एक दल की विजय पर नहीं, सब दलों के ऐक्य पर निर्भर होती है।

३१. हे भारत, ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश!
संसार में अपने सच्चे लक्ष्य के प्रति जागो, सामञ्जस्य और एकता का मार्ग दिखलाओ।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

वे सर्वज्ञ हैं

भारतीय विचार हमेशा विकसित होता रहता है। भारतीय विचार चार आश्रमों को मानता है। भारत ने हमेशा भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के मेल को, उन दोनों के सर्वोत्तम रूप को स्वीकार किया है। *गीता* चार आश्रमों से भी आगे जाती है। उसका कहना है कि भगवान् ही हमारे सभी कर्मों के पथ-प्रदर्शक हों। इसका मतलब यह है कि भागवत उपलब्धि ही प्रारम्भ-बिन्दु हो। श्रीअरविन्द एक और पग आगे जाते हैं, केवल भागवत उपलब्धि ही नहीं, केवल भगवान् का पथ-प्रदर्शन ही नहीं बल्कि दिव्य शरीर में दिव्य जीवन, ताकि भगवान् को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया जा सके। इसके बिना अगर हम भगवान् को उपलब्ध भी कर लें तो भी हमारे शरीर की सीमा के कारण अभिव्यक्ति सीमित रहेगी, सरकार के अज्ञान-भरे क़ानून, आज के आर्थिक जीवन, सामूहिक जीवन आदि के कारण अभिव्यक्ति अपूर्ण रहेगी। श्रीअरविन्द इसे "आर्थिक बर्बरता" कहते हैं। आर्थिक प्रोत्साहन की एक और ही कहानी है। आर्थिक व्यवस्था के अधीन हम कभी उच्चतम को नहीं पा सकते। यह प्रतियोगात्मक समाज है और ऐसे समाज में यह अनिवार्य है कि कुछ लोग दुःख भोगें इसलिए रामराज्य या सर्वोत्तम का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो सकता।

श्रीअरविन्द का दूसरा स्वप्न है, आर्थिक समाज में से आध्यात्मिक समाज में विकसित होना, जिस समाज का एक नमूना—ओरोवील—हम पॉण्डिचेरी

के पास बनाने की कोशिश कर रहे हैं, जहाँ धन का प्रचलन न होगा और कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति न होगी, जहाँ व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं को सर्वोत्तम स्तर पर निःशुल्क पूरा किया जायेगा — भोजनाच्छादन, चिकित्सा, पुस्तकालय, टेनिस, सिनेमा सब निःशुल्क होंगे — जहाँ मज़दूर और सञ्चालक में कोई भेद न होगा। तुम अपना काम चुनने के लिए स्वतन्त्र होगे और उसे भगवान् के प्रति समर्पण की भावना से करोगे। तब सभी चीज़ें बदल जायेंगी। हमें एक माली का बड़ा मज़ेदार अनुभव हुआ था। उसने मुझे बतलाया कि एक बार जब वह पौधों में पानी दे रहा था तो एक पौधे ने उससे कहा, "मुझे पानी नहीं दिया गया।" जब उसने मुड़ कर देखा तो पाया कि सचमुच वह उस पौधे को पानी देना भूल गया था! भारत में यह माना जाता है कि जब ऋषि पौधों को छूते थे तो उन्हें उनके गुणों का पता लग जाता था। इसी तरह भारत का वह ज्ञान जो मनोविज्ञान की कोटि में आता है उसे हमें मानवजाति को उस रूप में खोज कर देना चाहिये जो आधुनिक विज्ञान के साथ मेल खा सके। यह दिव्य पूर्णता है — जब भगवान् अवतरित होते और मानव शरीर द्वारा कार्य करते हैं।

हमारा लक्ष्य है सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी प्रकार के जीवन का दिव्य पथ-प्रदर्शन द्वारा पूर्ण रूपान्तर। अगर यह आधार न हो तो हमारी *गीता* झूठी होगी, हमारी भारतीय संस्कृति झूठी होगी और हम भारतीय कहलाने-लायक़ न होंगे। केवल वही व्यक्ति भारतीय कहलाने का अधिकारी हो सकता है जो भगवान् के पथ-प्रदर्शन की खोज करे और उसके अनुसार चले। हिन्दू धर्म का सच्चा अर्थ यही है।...

मैं अपने-आपको मानवजाति के कल्याण के लिए समर्पित करना चाहता था। मैं नहीं जानता था कि आध्यात्मिकता क्या होती है और वही पार्थिव पूर्णता का मार्ग है। मैं व्यापार के मामलों में भी माताजी से सलाह माँगा करता था और वे मेरा पथ-प्रदर्शन करती भी थीं। उनके साथ कई बार मेरा मतभेद भी होता था पर मैं देखता था कि उनकी बात हमेशा ठीक और मेरी ग़लत निकलती थी। अतः, एक बार मैंने उनसे पूछा, "हमें यह ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? यह तो हमें कभी नहीं पढ़ाया गया।" उन्होंने कहा, "यह ज्ञान तुम सब पा सकते हो।" मैंने कहा, "कैसे?" माताजी ने उत्तर दिया, "जब तुम्हारे अन्दर पसन्द और कामनाएँ न हों तब यह ज्ञान

आता है।" *गीता* कहती है — पसन्द और कामनाएँ न रखो। मैंने बचपन से ही *गीता* में पढ़ा था कि अगर तुम्हारे अन्दर पसन्द और कामनाएँ न हों तो तुम्हारे अन्दर अन्तर्भास विकसित होता है। मैंने इस पर विश्वास नहीं किया। जिस बेचारे अध्यापक ने मुझे *गीता* पढ़ायी थी वह अन्तर्भास के बारे में जानता ही न था। लेकिन जब यही बात माताजी ने कही तो मैं एकदम समझ गया। मैंने माताजी से पूछा, "पसन्द और कामना से कैसे बचा जा सकता है?" उन्होंने कहा, "जब कभी तुम्हें कोई ज़रूरी फ़ैसला करना हो तो अपने हृदय-केन्द्र में ध्यान करो और वहीं प्रश्न करो, कोई उत्तर न सोचो, उत्तर के लिए प्रतीक्षा करो।" मैं तुमको ईमानदारी से बतलाता हूँ कि मैंने जब कभी अपने निदेशकों की सभाओं में इस तरह का प्रयास किया तो मैं हमेशा सफल हुआ।...

तुम परिस्थितियों को बदल दो और तुम्हारे अन्दर भगवान् की क्रिया भी बदल जायेगी। माताजी ने कहा है कि हर व्यक्ति की अनेक नियतियाँ होती हैं और उस पर वही नियति लागू होती है जिसकी चेतना में वह निवास करता है। चेतना को उच्चतम स्तर तक यानी, भगवान् के साथ एकत्व तक पहुँचाने से सब कुछ बदल जाता है। उन्होंने कहा कि प्रार्थना भी नियति को बदल सकती है। उन्होंने एक उदाहरण दिया। मान लो कि कोई फल पेड़ से टूट कर ज़मीन पर आता है, तुम अपना हाथ बीच में करके उसे गिरने से रोक देते हो और उसकी नियति बदल जाती है। इस तरह प्रार्थना भी नियति को बदल देती है। कुछ दिनों बाद मैंने उनसे पूछा, "क्या हाथ को बढ़ाना नियति का एक अंग न था जिसने फल को गिरने से बचाया?" उन्होंने कहा, "तुम्हें निश्चय करना है। अगर तुम ऊपर से देख रहे हो तो यह ठीक है पर अगर तुम नीचे से देख रहे हो तो ऐसी बात नहीं है, चीज़ें बदल सकती हैं।" फिर उन्होंने कहा, "मेरे बालक, तुम हिन्दू-पुराण-कथाओं के प्रभाव में बहुत हो। हर चीज़ बदल सकती है। मैं कहती हूँ, हर चीज़ बदल सकती है।"

अब एक और मज़ेदार बात पर आता हूँ। मैंने कहा, "माताजी, यह तो ठीक है। मैंने निश्चय किया है कि मैं भगवान् की आज्ञा का पालन करूँगा। मैं अपने अज्ञान-भरे, सीमित मन का अनुकरण नहीं करना चाहता। उससे मैं कहीं का नहीं रहता। लेकिन मुझे पता कैसे लगे कि भगवान् की

आज्ञा क्या है? मैं भगवान् की आज्ञा समझ कर कोई मूर्खताभरी चीज़ कर सकता हूँ।" उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, "मेरे बालक, तुम्हें भगवान् को इतना श्रेय तो देना ही चाहिये कि 'उनमें' कम-से-कम तुम्हारे जितनी बुद्धि तो है ही।" मैंने कहा, "माताजी, आप यह क्या कह रही हैं। वे तो सर्वज्ञ हैं!" उन्होंने कहा, "हाँ, वे सर्वज्ञ हैं, वे तुम्हारी समस्याएँ जानते हैं, वे जानते हैं कि तुम उन पर निर्भर हो और अगर तुम उन पर निर्भर हो और उनकी आज्ञा मान कर कार्य करते हो तो अगर तुम भूल करो तो भी वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। इस बात पर विश्वास रखो।" मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ कि इस चीज़ ने मेरी बहुत सहायता की है।

(क्रमशः) —नवजातजी

शाश्वत ज्योति

(६)

हम आश्रम की वरिष्ठ साधिका चित्रा सेन—हमारी प्रिय चित्रा दी—की डायरी में अंकित श्रीमाँ की बातचीत बीच-बीच में दे रहे हैं। स्वयं चित्रा दी के शब्दों में सुनिये—

'इस वार्तालाप में माताजी की अधिकांश बातें मेरी डायरी से हैं। हम उनके साथ जो भी बातचीत करते थे, उन्हें यथासम्भव ईमानदारी से लिख लेते थे। यह वार्तालाप माँ के द्वारा न तो देखा गया है और न ही सुधारा।'

माँ हमारे सभी खेलों में उपस्थित रहती थीं। हमने वॉली-बॉल, बास्केट-बॉल, टेबल-टेनिस इत्यादि शुरू कर दिया था। वे टेनिस खेला करती थीं। शुरू में वे टेबल-टेनिस भी खेलती थीं, लेकिन बाद में जब हमारा 'टेनिस कोर्ट' बन गया तब उन्होंने टेबल-टेनिस छोड़ कर टेनिस खेलना शुरू कर दिया और तब उन्होंने सलवार-कमीज़ भी पहनना शुरू किया था। मुझे अब भी याद है जब वे पहले दिन क्रीड़ांगण में अपनी नयी पोशाक पहन कर आयी थीं। शाम को क़रीब ४.३० बजे वे टेनिस खेलती थीं। अपने साथ खेलने का मौक़ा पाने के लिए तैयार खड़े नवयुवकों में से वे किसी एक जोड़ी को बुलातीं। प्रणव-दा हमेशा उनके साथी-खिलाड़ी रहते थे। और वे हर जोड़ी के साथ ५ खेल खेलती थीं।

हमारे जन्मदिन पर कुछ लड़कियों को उनके साथ खेलने का सौभाग्य मिलता था। वे हमें पहले से ही आमन्त्रित कर देती थीं। उस खेल के लिए हमारे साथी-खिलाड़ी को भी वे ही चुनती थीं। उस समय हमारी 'सिंगल्स', 'डबल्स' और 'मिक्स डबल्स' की टेनिस प्रतियोगिताएँ होती थीं। माताजी ने 'मिक्स डबल्स' के दल बनाये थे। और फिर वे उन सभी के साथ खेलतीं। ऐसे ही हमें भी उनके साथ खेलने का मौक़ा मिला करता था। लगभग दो सालों तक उन्होंने लड़कियों के साथ 'सिंगल्स मैच' खेले। हम टेनिस का एक 'सेट' उनके साथ खेलते। बीच में वे प्रणव-दा को क्रीड़ांगण में छोड़ कर वापस 'टेनिस-ग्राउण्ड' में हमारे साथ 'सिंगल्स मैच' खेलने आ जातीं। वह हमारे लिए कैसा अनोखा अवसर था! बाद में, कभी-कभी वे खेल के बारे में अपनी राय देतीं। हम हमेशा गेंद को माँ के दाहिने हाथ की तरफ़ देने की सावधानी बरतते थे क्योंकि उनके लिए यह सुविधाजनक होता था। हमारे प्रशिक्षक हमसे हमेशा कहा करते थे, "अगर तुम लोग ऐसा नहीं करोगे तो कैसे श्रीमाँ के साथ खेल सकोगे?" एक बार मेरी एक मित्र जब माँ के साथ खेल रही थी, वह गेंद को यहाँ-वहाँ हर जगह मार रही थी। हम चकित थे, क्या कर रही है यह? लेकिन माँ पूरे 'कोर्ट' में हर जगह दौड़ती हुई गेंद ले रही थीं, बाद में जब वे क्रीड़ांगण में आयीं उन्होंने मुझसे कहा: "ऐसा अनुभव मुझे पहली बार हुआ। ऊपर से चेतना इस शरीर को निर्देश दे रही थी कि क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये। और शरीर उसका अनुसरण कर रहा था। मुझे इस बात की बहुत ख़ुशी है और मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

वे टेनिस पसन्द करती थीं, उन्होंने कहा था कि इस खेल को तुम सचेतन होकर खेल सकते हो। तुम इस तरह बास्केट-बॉल नहीं खेल सकते। उन्होंने कहा था, "जब मैं टेनिस खेलती हूँ तो हर 'स्ट्रोक' में अपनी चेतना डालती हूँ। मैं अपना कार्य करती हूँ।" जब हम उनके साथ खेलते थे तो हम जानते थे कि वैसे बाहरी तौर पर तो यह खेल है, लेकिन आन्तरिक रूप से इसके द्वारा हमारा सम्पर्क माँ के साथ बना रहता है। मैं यह बात अपने लिए कह सकती हूँ। एक दिन उनके साथ मेरे खेल के बाद उन्होंने कहा, "जब हम खेल रहे थे तो हम दोनों के बीच वार्तालाप हो रहा था।" तो देखो, यह चेतना के किसी स्तर पर आदान-प्रदान था, यह केवल एक

खेल नहीं था, जो भौतिक स्तर पर खेला गया था।

यहाँ टेनिस के खेल पर माँ का एक बहुत ही मौलिक अवलोकन है जो शारीरिक शिक्षा की सभी गतिविधियों पर लागू होता है, "तुम खेल के आनन्द के लिए खेल सकते हो, न कि जीतने के लिए। तुम ठीक उतना ही अच्छा खेल सकते हो।" फिर उन्होंने कहा, "यदि तुम ऐसा कर सको तो यह शरीर को कई प्राणिक और मानसिक प्रभावों से मुक्त करने में मदद करता है।"

हम यही कोशिश कर रहे हैं और हमें करनी भी चाहिये। हमारी शारीरिक शिक्षा का यही मूल आधार है; मज़बूत, स्वस्थ लठैत बनना नहीं बल्कि अपने शरीर में चेतना हासिल करने के लिए यह करो।

एक और मधुर क़िस्सा : माँ के लौट जाने का समय हो गया था और मैं उनके साथ खेल के मैदान के मुख्य द्वार तक चल रही थी। अचानक उन्होंने कहा, "तुम्हें पता है, हम 'three-legged' दौड़ (तीन-पैर की दौड़) में बहुत अच्छे साथी बन सकते हैं। मैं चकित रह गयी, मैंने पूछा, "क्यों माँ?" उन्होंने कहा, "नीचे देखो।" मैंने नीचे देखा। हमारे क़दम समान थे, हम साथ-साथ क़दम उठा रहे थे।

(क्रमशः) अनु. वीणा

सबसे बड़ा धन

किसी नगर में एक राजा राज्य करता था। उसने एक वाटिका बनवायी। इस वाटिका में संसार की हर वस्तु थी। हर वस्तु का मूल्य अलग-अलग था। लेकिन इन वस्तुओं पर मूल्य लिखा नहीं गया था। राजा ने यह ऐलान करवाया था कि जो व्यक्ति सबसे अधिक मूल्य की वस्तु लेकर वाटिका से बाहर आयेगा, उसे इस वर्ष राजपुरुष घोषित किया जायेगा। राजपुरुष बनने के लालच में लोग वाटिका में जाते, अपने-आप वस्तु का मूल्य समझते और उसे उठा कर लाते।

कोई हीरे-जवाहरात लाता। कोई पुस्तक, क्योंकि ज्ञान से अधिक मूल्यवान् कोई और वस्तु नहीं।

कोई रोटी उठा कर लाता, क्योंकि ग़रीब के लिए रोटी से अधिक मूल्यवान् कुछ और वस्तु नहीं है।

इसी प्रकार हर व्यक्ति कुछ-न-कुछ लेकर ही वाटिका से बाहर आता और अन्त में! एक योगी ने वाटिका में प्रवेश किया। वह पूरी वाटिका में घूमा। परन्तु, उसने किसी भी वस्तु को हाथ न लगाया। और ख़ाली हाथ ही बाहर आ गया।

और फिर!

जब राजा ने सूची में योगी का नाम देखा और यह देखा कि वह वाटिका से कुछ नहीं लाया है तो उसने योगी को बुलाया। राजा ने उस योगी से पूछा —"तुम वाटिका से कुछ भी क्यों नहीं लाये योगी?"

योगी ने कहा—"लाया हूँ महाराज।" "क्या?" उसकी बात पर राजा ने पूछा। अन्य दरबारी भी हैरानी से उस योगी की ओर देखने लगे। योगी ने कहा—"मैं सन्तोष लाया हूँ, महाराज।"

"सन्तोष!" राजा सोच में पड़ गया। बोला—"तुम्हारा सन्तोष कितना मूल्यवान् है?"

"सबसे ज़्यादा मूल्यवान् है महाराज!" "कैसे?" राजा ने पूछा।

"महाराज, इस वाटिका में आपने जितनी वस्तुएँ रखी हैं, उन्हें प्राप्त कर मनुष्य को जो सन्तोष होता है, वह पूर्ण नहीं होता। वह आधा ही सन्तोष होता है, क्योंकि जिस वस्तु को प्राप्त करने से उसे सन्तोष मिला है, यदि वह वस्तु खो जाये तो मनुष्य का सन्तोष भी गुम हो जाता है। सन्तोष का केन्द्र-बिन्दु मन है। जिसके पास सन्तोष है, उसी व्यक्ति के पास संसार की सबसे मूल्यवान् वस्तु है।"

राजा योगी की बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने विद्वानों की एक सभा बुलायी और उसमें योगी की बात रखी। विद्वानों ने योगी की बात को समझा और उस योगी को उस वर्ष का राजपुरुष घोषित कर दिया।

कहा भी है—**गो-धन, गज-धन, वाजि-धन और रतन-धन खान।**
जब आवत सन्तोष-धन, सब धन धूरि समान।

'शिशु मन्दिर सन्देश' से साभार

मैं सर्वस्व तेरा! तेरा ही!...

जहाँ भक्त वहाँ भगवान्। जहाँ भगवान् वहाँ भक्त—अन्तर है क्या कोई?... तो सुनिये :

'चक्र'जी की कहानी, सम्पादिकाजी की ज़ुबानी—

आज कृष्ण-कन्हैया की वर्षगाँठ है। चारों तरफ़ उत्साह ही उत्साह उफन-उफन कर बह रहा है। सभी चराचर आकण्ठ उसमें डूबे हुए हैं। कन्हाई के जन्मदिवस के अधिकांश संस्कार पूरे हो गये हैं। महर्षि शाण्डिल्य ब्राह्मणवर्ग के साथ यज्ञ-पूजन करवा चुके हैं। धन-धान्य इत्यादि से उन सबका सत्कार भी बाबा नन्द और मैया यशोदा ने कर दिया है, वे सभी प्रसन्नहृदय अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान कर गये हैं। गोप-गोपियाँ भी अपने-अपने उपहार अपने कुँवर कन्हाई को भेंट कर चुकी हैं। अब आयी है कृष्ण के सखाओं की बारी...

हाँ, हाँ, कन्हाई के सखा भी उन्हें उपहार अवश्य देंगे, लेकिन देंगे अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार; उन बड़े-बड़े गोप-गोपियों में से तो किसी ने भेंट-स्वरूप कान्हा को रत्नों का हार पहनाया, किसी ने मणियों के कंकण, कोई उसके लिए बहुमूल्य वस्त्रों का जोड़ा लाया तो कोई ले आया टोकनी-भर खिलौने!

लेकिन कृष्ण के सखाओं का उपहार इन सबसे एकदम भिन्न है—

सबसे पहले आया प्रिय सखा भद्र। छूटते ही बोला—'कनूँ, मैं तुझे तिलक लगाऊँगा।' यह श्याम के जन्मदिन पर सदैव सबसे पहले आ उपस्थित होता है। फिर बोला, 'सखे, मेरे पास तो कुछ है नहीं, तेरी ही चहेती गाय, कामदा के गोबर का टीका लगा दूँ तेरे भाल पर?'

'सच! हाँ, हाँ लगा भय्या।' अब नन्दनन्दन तो मानों हर्ष से विभोर हो उठा। कान्हा ने सोचा, अरे, इतनी महत्त्वपूर्ण बात तो महर्षि शाण्डिल्य तक को न सूझी; और उसका सखा भद्र कितना बुद्धिमान् है। भला गोपकुमार का तिलक गोमय के बिना कैसे सम्पूर्ण हो सकता है?

आज कन्हाई सिर से पैर तक नूतन रत्नाभरणों से सजा हुआ है। उसकी अलकों में अनेक रंगों के रत्न-मणियों की माला गुँथी है, रत्न-जटित

नन्हा-सा मुकुट सिर पर शोभायमान है। भाल पर महर्षि द्वारा लगाया चन्दन-केसर का तिलक विराजमान है जिस पर अक्षत लगे हुए हैं। भद्र ने अक्षतों के नीचे, ठीक भ्रूमध्य में अपनी अनामिका से गोबर का एक छोटा-सा बिन्दु सजा दिया।

'बाबा, बाबा, यह मुख्य तिलक लगाना तो सब भूल ही गये थे '—कृष्ण अब बाबा को, दाऊ को, चाचा को, मैया को सबको दौड़-दौड़ कर अपने माथे का तिलक दिखला रहा है और हर्षातिरेक से कहता जा रहा है—'भद्र ने लगाया है, मेरे भद्र ने!'

और इसके साथ ही सखाओं के अद्वितीय, अनुपम उपहारों का क्रम चल पड़ा... तोक कहीं से एक तिरंगी पुष्प ले आया है—श्याम-श्वेत-अरुण तीनों रंगों की आभा उस फूल की छटा को ऐसा निखार रही है कि कृष्ण उसे अपनी हथेली पर धरे सभी जगह चक्कर लगा-लगा कर अपने मित्र के द्वारा दिये अमोल उपहार के लिए प्रशंसा बटोरता फिर रहा है, झूम-झूम कर हर एक को उसके दर्शन करा रहा है। उसके नेत्र, उसका उल्लास मुखरित हो पूछ रहा है—'ऐसी अद्‌भुत वस्तु है किसी के पास? क्या कोई भी रत्न तुलना में इस अपूर्व निधि के सामने ठहर सकता है?' और उधर तोक... एक छोटे-से उपहार को दे उसने तो मानों सारा त्रिभुवन अपनी मुट्ठी में समेट लिया। हर्ष का पुतला बना वह भी अपने सखा, यानी अपने सर्वस्व के साथ परछाईं की तरह फिर रहा है, क्या वही अकेला उनके साथ है? नहीं, नहीं... कान्हा के उतावले-मतवाले सभी सखाओं में अपने-अपने उपहार देने की होड़ मची है, कुछ धक्कम-धक्का भी हो रही है, हर एक अपनी भेंट सखा को पहले थमाना चाहता है। आख़िर कृष्ण ही बोल उठे—सखाओ! हम यहीं बैठ जाते हैं, मैं सभी के उपहार एक-एक करके लूँगा। बीच राह में चौकड़ी जम गयी। कोई नयी-नयी किसलयों का हार पहना रहा है, किसी के हाथ में मोरपंख का गुलदस्ता है, किसी की हथेली यमुनाजी के तट की बालू से सने छोटे-छोटे पत्थरों से भरी है तो कोई और चित्र-विचित्र जंगली फूलों को थाली में सजाये खड़ा है—जितने सखा उतने उपहार और उससे भी सहस्रगुना प्रेम—कन्हाई तो उस बाढ़ में बह गया। सुध-बुध खो बैठा, प्रत्येक भेंट को सिर-आँखों से लगा, निहाल हो उठा, और गद्‌गद हो उठा उसका वह समस्त मित्र-समाज जिसके प्रत्येक

सदस्य को उनके प्रियतम, उदारतम सखा ने इन्द्रासन पर बिठा दिया था।

कृष्णचन्द्र इतना प्रफुल्लित-उल्लसित तो किसी भी गोप या गोपी के उपहार को पाकर नहीं हुआ, जब कि देश-देशान्तर से आये गोप-गोपियाँ न जाने कहाँ-कहाँ से अनमोल मणि-माणिक्य, रत्नाभरण इत्यादि सौगात के रूप में लाये थे। वैसे यह सच नहीं कि अपने अग्रजों द्वारा दिये उपहारों से वे कम आनन्दित हुए थे, लेकिन सखाओं के फूल-पत्ते, कंकड़-पत्थर, पंख आदि पाकर तो यह कन्हाई ऐसा नाचता-कूदता-फाँदता फिर रहा है जैसे धरती पर साक्षात् हर्षोल्लास मूर्तिमान् हो उठा हो!

बड़ी देर बाद जब कृष्ण तनिक अपने आपे में आया तो मैया और बाबा ने बड़े स्नेह से कहा—'लाल, अब अपने सखाओं को भी उपहार देकर उनका सत्कार करो।'

'अरेऽऽऽ, मैया, बाबा, अपने उपहारों में लीन, मैं तो बिसरा ही बैठा था इस बात को!!' और कन्हाई दौड़ आया उस राशि के समीप जो मैया ने सजा रखी थी। इस बार यशोदाजी ने अच्छी तरह समझा दिया था नन्द बाबा को कि उनका नीलमणि अपने सखाओं को ऐसी-वैसी वस्तु नहीं देना चाहेगा, इसीलिए बाबा ने महीनों लगाये हैं उपहारों के चयन में, बहुत प्रयत्न करके दूर-दूर से मँगवाये हैं।

मैया ठिठकी खड़ी रह गयीं। बाबा भी स्तब्ध देखते रह गये। इस बार भी ठीक वही हुआ जो पिछली वर्षगाँठों पर होता चला आया है। कोई प्रयास सफल नहीं हुआ। उन बहुमूल्य उपहारों में से कोई भी कृष्ण को ऐसा नहीं लगता है जिसे वह अपने किसी भी सखा को दे सके—यानी, एक भी उसकी आँखों में नहीं जँचा, उसके हृदय को नहीं भाया।

कन्हाई उन उपहारों में से कोई चमकती मणि उठाता, अपने सखा तोक को देने की सोचता और तभी तोक का दिया वह तिरंगी पुष्प उसकी दृष्टि के सामने घूम जाता और उसकी वह अनुपम भेंट के सामने वह मणि उसे काँच क्या, कौड़ी भी नहीं प्रतीत होती, बहुमूल्य मणि एकदम से परे सरका दी जाती। सखाओं के दिये पंखों, पत्थरों, किसलयों, पुष्पों के अतुल्य उपहारों के सम्मुख मणिरत्न-जटित-खचित वे सभी महार्घ उपहार उसे तुच्छ प्रतीत हो रहे थे। हर वर्ष की तरह इस बार भी वह अपने प्राण-सम बन्धुओं को प्रतिभेंट में कुछ भी नहीं दे पा रहा था। बार-बार

उसका हाथ अपने भाल पर भद्र द्वारा लगाये गोबर के तिलक पर पहुँच जाता और वह निहाल हो उठता, साथ ही बहुत खिन्न भी, क्योंकि... क्या दे वह अपने मित्रगण को??? विशाल, अञ्जन-रञ्जित कमल-लोचन भर आये नन्दनन्दन के। बलदाऊ की ओर देख कर बड़े ही करुण स्वर में पुकारा उसने —"दादा!..."

प्रत्येक, प्रत्येक वर्षगाँठ पर ठीक यही दृश्य उपस्थित होता है और हर बार दाऊ ही अपने अनुज को विभिन्न उपायों से कष्ट में से उबार लेते हैं। इस बार वे बोले — 'कनूँ! तुम अपने सखाओं को देकर सन्तुष्ट हो सको ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती है भला? बताओ तो सही कनूँ!'

कन्हाई की भौहों पर बल पड़े, वह सोचने लगा, सोचता रहा... त्रिभुवन की कोई वस्तु उसे ऐसी न लगी जिसे देकर वह कृतकृत्य हो सके, सन्तोष से ओत-प्रोत हो जाये...। तब?

एक बार फिर कन्हैया ने बलदाऊ को निहारा। दाऊ की आँखों में झाँकते ही श्यामसुन्दर हर्षातिरेक से विह्वल हो उठा। उन नयनों से सच्चे प्रेम की जो अजस्र कौंधें छिटक रही थीं उनमें कान्हा ने अपना उपहार पा लिया...

और फिर, फेंके, बिखरे रत्नाभरणों, मणियों, वस्त्रों के बीच से कूद कर उसने सामने खड़े भद्र को अपने आलिंगन में जकड़ लिया — वाणी नहीं फूट रही, लेकिन कान्हा का रोम-रोम पुकार रहा है, "सखे! यही है मेरा प्रतिदान —'मैं तेरा, मैं तेरा'।"

तोक, सुबल, श्रीदाम — एक-एक को अपने बाहुपाश में बाँध कर कन्हैया सुध-बुध खो बैठा है। प्रत्येक सखा उससे लिपट कर अन्तरतम में यही अनुभव कर रहा है कि साँवरा उसी का प्रियतम सखा है, क्योंकि हर एक को अंक में भर कर कृष्ण का रोम-रोम यही गुञ्जारित-प्रतिगुञ्जारित कर रहा है — "मैं सर्वस्व तेरा हूँ, तेरा ही हूँ।"

भक्त को दिये भगवान् के इस उपहार के सम्मुख ब्रह्माण्ड का कौन-सा उपहार टिक सकता है भला?

—वन्दना

मधुर माँ, वर दे कि हम हमेशा तेरे सरल, प्रेम-भरे बालक बने रहें, तुमसे अधिकाधिक प्रेम करते रहा करें।

बुझते दीपक का सन्देश

दीपक का तेल चुक गया था। केवल रूई की बाती जल कर मन्द-मन्द प्रकाश बिखेर रही थी। उसके अन्तिम समय को निकट आया देख कर एक गृहस्थ ने पूछ ही लिया—'तुम जीवन-भर आलोक बिखेर कर दूसरों का पथ-प्रदर्शन करते रहते हो, संसार के साथ इतनी भलाई करते रहते हो, फिर भी तुम्हारा इस प्रकार दुःखद अन्त देख कर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है।'

बुझते दीपक ने पूर्ण शक्ति के साथ अन्तिम बार अपनी आभा बिखेरते हुए कहा—'भाई! इस भौतिक जगत् में जिसका जन्म होता है, उसका अन्त भी होता है। हम प्रयास करने पर भी उससे बच नहीं सकते। हाँ, इतना अवश्य कर सकते हैं कि अपने जीवन की मूल्यवान् घड़ियों को व्यर्थ ही नष्ट न होने दें।'

—अज्ञात

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

आनन्द की यह अद्‌भुत सृष्टि, धरती पर उतरने
के लिए हमारी पुकार की प्रतीक्षा में
हमारे द्वारे खड़ी है...।

श्रीमाँ

Our Gratitude and consecration to the
Mother and Sri Aurobindo

Sri Aurobindo Society, Nairobi Centre, Kenya

Renaissance

AN ONLINE JOURNAL OF SRI AUROBINDO SOCIETY

renaissance.aurosociety.org

PRESENTED BY BHĀRATSHAKTI

India must be reborn, because her rebirth is demanded by the future of the world.

Featuring curated pearls of wisdom from the oceanic writings of **Sri Aurobindo and the Mother**, as well as fresh perspectives and insights on India and her creative genius manifesting in various domains – spiritual, artistic, literary, philosophic, aesthetic.

Sri Aurobindo Society

BHĀRATSHAKTI

INDIA – FROM PAST DAWNS TO FUTURE NOONS

10 ISSUES PER YEAR

Released on the 21st of every month (special issue on August 15)

SUBSCRIBE FOR FREE

Date of Publication: 1st August 2024
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष २, अंक १३, PONHIN00007 (RNI)
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१